॥ श्रीः ॥

श्रीमद्भागवतान्तर्गत-

❋ सप्तगीतम् ❋

(वेणुगीतं, गोपीगीतं, युगलगीतं, भ्रमरगीतं, श्रुतिगीतं, महिषीगीतं, अवधूतगीतं चेति)

भाषानुवादसहितम्.

भाषेयं रचिता प्रेम्णा मह्यारण्येन शास्त्रिणा ।
यदि स्यात्स्खलनं ह्यत्र क्षन्तव्यं तत्सुहृज्जनैः ॥

तच्च

श्रीकृष्णदासात्मज-गङ्गाविष्णुना

स्वकीये

"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालये

मुद्रितम् ।

कल्याण-मुंबई.

संवत् १९५१, शके १८१६.

Office of the assistant Inspector of Sanskrit Schools in Mysore.

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्भागवतान्तर्गत-

❀ सप्तगीतम् ❀

(वेणुगीतं, गोपीगीतं, युगलगीतं, भ्रमरगीतं, श्रुतिगीतं, महिषीगीतं, अवधूतगीतं चेति)

भाषानुवादसहितम्.

भाषेयं रचिता प्रेम्णा महारण्येन शास्त्रिणा ।
यदि स्यात्स्खलनं ह्यत्र क्षन्तव्यं तत्सुहृज्जनैः ॥

तच्च

श्रीकृष्णदासात्मज-गङ्गाविष्णुना

स्वकीये

"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालये

मुद्रितम् ।

कल्याण-(मुंबई)

संवत् १९५१ शके १८१६

श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ।



॥ श्रीमुरलीधराय नमः ॥

अथ

सप्तगीतप्रारम्भः ।

अथ वेणुगीतम्.

' सप्तवर्षकी अवस्थावाले श्रीकृष्णजीने इंद्रादिक देवोंके गर्व दूर करनेकेलिये गोवर्द्धनधारणआदि क्रीडा की और किशोरअवस्थामें वेणुद्वारा व्रजवासियोंकी स्त्री गोपियोंको रात्रिसमय अपने पास बुलाकर उनके संग रमण करतेभये यही दिखातेहैं '–

॥ श्रीशुक उवाच ॥

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ॥
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–शरत्कालमें फुलीहुई मल्लिका (मोगरे) है जिसमें ऐसी रात्रियोंको देखकर और अघटितघटनामें चतुर अपनी अचिंत्य शक्तिकरके नानागोपियोंके संग रमण करनेकी इच्छा करतभये. यद्यपि गोपियोंको भगवान्‌के संग रमण करनेकी इच्छा तो सदैव हैं इसलियेही कात्यायनीदेवीके पूजनमें कृतप्रयत्न थीं. तथापि वैराग्यआदि गुणोंकरके परिपूर्ण

श्रीकृष्णभगवानने अपने भक्तगोपियोंके मनोरथ पूर्ण करनेके-लिये उन्होंके संग रमणक्रीडार्थ मन किया ॥ १ ॥

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं
प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः ॥
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्
प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥ २ ॥

जिसकालमें श्रीभगवानने रमण करनेको मन किया उ-सकालमें जैसे बहुतकालतक जिसका दर्शन हुआनहीं ऐसा प्रिय परदेशसे आनकर अपनी प्रियाके मुखको कुंकुमसे लिप्त करनेका विचार करताहुआ आताहै तैसेही चंद्रमा अपने उदयरागसे पूर्वदिशाके मुखको लिप्त करताहुआ तथा सुख देनहार अपनी किरणोंकरके स्थावरजंगमात्मक प्राणियोंके ताप (ग्लानि) दूर करताहुआ उदयको प्राप्तहुआ ॥ २ ॥

दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं
रमाननाभं नवकुङ्कुमारुणम् ॥
वनं च तत् कोमलगोभिरञ्जितं
जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ॥ ३ ॥

भूमिको आनंद देनेवाला नवीन कुंकुमकीनाईं अरुणयुक्त तथा लक्ष्मीके मुखकी कांतितुल्य कांतिवाले चंद्रको देख-कर और उसके अल्पप्रकाशवाली किरणोंकरके रमणीय वनको देखकर गोपियोंके मनको हरनेवाले श्रीकृष्णजी मधुर गान करतेभये ॥ ३ ॥

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं
व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ॥
आजग्मुरन्योऽन्यमलक्षितोद्यमाः
स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ॥४॥

उसीसमय कामदेवका उद्दीपन करनेवाले गानको सुन-कर जिनका मन श्रीकृष्णजीकी ओर लगरहाहै और जिनको परस्परका उद्यम मालूम नहीं हुआहै, तथा जिनके कानोंके करनफूल चलनेकी त्वरासे हिलरहेहैं, ऐसी व्रजस्त्रियां जि-सस्थानमें वह कांत (कमनीय श्रीकृष्णजी) रहे तहां आगमन करतीभईं ॥ ४ ॥

दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद्दोहं हित्वा समुत्सुकाः ॥
पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहतेहैं कि, हे राजन् ! जिस कालमें श्रीकृष्णभगवानने वेणुसे गान किया, उसकालमें व्रजमें को-ई गोपियां गौको दूहतीहुईं दुहनेके पात्रको छोडकर और कोई तो स्थाली (टोकनी) मेंका दुग्ध चुल्हेमेंही गिराकर और कोई गुडघृतसे मिश्रित गोधूमचूर्णका सं-याव (शिरा) चुल्हेपरही छोडकर उत्साहयुक्त होकर श्री-कृष्णजीके सन्मुख आतीभईं ॥ ५ ॥

परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून् पयः ॥
शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम्॥६॥

कोई गोपियां अपने पतिपुत्रके अगाडी अन्नका प-

रिविषण (परोसना) त्यागकर और अन्यकोई दूध पी-तेहुए बालकोंको छोडकर और कोई अपने पतियोंकी सेवा छोडकर कोई तो भोजनको छोडकर श्रीकृष्णजीके स-न्मुख दौडकर आतींभई ॥ ६ ॥

लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने ॥
व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः ॥७॥

कोई अपने पतियोंके शरीरपर चंदनादिकसे लेपन करतींहुई लेपन करना छोडकर और कोई अपने पतिका तैलादिसे म-र्दन करतींहुई मर्दन छोड और कोई अपने नेत्रनमें अंजन (सूरमा) लगाना छोडकर और अपने वस्त्रआभूषणको उल-टपुलट पहिरकर, श्रीकृष्णजीके सन्मुख आतीभई ॥ ७ ॥

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ॥
गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥ ८ ॥

हे राजन्! श्रीकृष्णजीने जिनका मन हरलियाहै वह मो-हितहुई; पति, पिता, भ्राता, बंधुओंने वहां मतजाओ मतजाओ ऐसा कह रोकीहुई तोभी श्रीकृष्णजीके सन्मुख आनेमें रुकी-नहीं ॥ ८ ॥

अन्तर्गृहगताः काश्चित् गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः ॥
कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः ॥ ९ ॥

कोई पतिआदियोंसे कपाट बंद करनेसे घरमें स्थितहुई तब दुःखपूर्वक नेत्रनको मूंदकर श्रीकृष्णजीकाही ध्यान करती-रहीं ॥ ९ ॥

दुःसहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः ॥
ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्त्या क्षीणमङ्गलाः ॥ १० ॥
इति श्रीमद्भागवतान्तर्गत–वेणुगीतं समाप्तम् ॥ १ ॥

दुःखकरकेभी सहनेंको अशक्य जो श्रीकृष्णजीका विरहरूप अग्नि उसका जो तीव्रताप (अनेकजन्ममें अनेकविध नरकादि भोग्यरूप दुःख) उसकरके नष्ट होगयेहैं पाप जिन्होंके और ध्यानसें प्राप्त जो अच्युत भगवान्का आश्लेष उससे जो आनंद तिससे नष्ट होगयेहै अनेकजन्मोंके सुखजनकपुण्य जिन्होंके ऐसी वे गोपियां जारबुद्धिकरके उस श्रीकृष्णजीसे संगतहुई तो-भी तत्काल प्रकर्षकरके (सहवाससे) क्षीण (नष्ट) हुआ है बंधन जिनका ऐसी होकर प्रारब्धकर्मको भोगनेंवाले शरीरको त्यागतींभई अर्थात् मोक्षको प्राप्त हुई ॥ १० ॥

इति श्रीमहावनशास्त्रिकृत–श्रीमद्भागवतान्तर्गतवेणुगीत-भाषानुवादः समाप्तः ॥ १ ॥

॥ श्रीगोपीवल्लभाय नमः ॥

अथ
गोपीगीतप्रारम्भः।

'श्रीमद्भागवतदशमस्कंधपूर्वार्धके तीसवें अध्यायके अंतमें यह कहाहै कि, श्रीकृष्णजीका ध्यान करनेवाली तथा श्रीकृ-

ष्णजीके आगमनकी आकांक्षावाली तथा सब मिलीहुई गोपियां यमुनाके तटपर आकर श्रीकृष्णजीको गानेलगीं सो गान दर्शातेहैं '—

॥ गोप्य ऊचुः ॥

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ॥
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका-
स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥ १ ॥

गोपियां बोलीं—हे दयित ! (हे प्रिय) तेरे जन्मकरके यह व्रज वैकुंठआदि लोकसेभी अधिक वर्तताहै, अर्थात् वैकुंठलोकसेभी उत्कृष्ट है. क्योंकि तेरे जन्मसे आपके अनुकूल चलनेवाली इंदिरा (लक्ष्मीजी) नित्य इस व्रजमें रहतीहै. अर्थात् व्रजको अलंकृत कर रहीहै और आपके अर्थही किसी प्रकारसे धारणकर रक्खेहैं प्राण जिन्होंने ऐसे आपके गोपीजन आपको सब दिशाओंमें खोजतेहैं अर्थात् ढूंढतेहैं इससे आप हमारे दृष्टिके गोचर हो. यह हमारी प्रार्थना है. तात्पर्य यह है कि, आपके जन्मसे अत्यंत हर्षित इस व्रजमें आपके दासभूत हमारेको अंतर्धान होनेंसे दुःख देना आपको उचित नहीं प्रत्युत आपका दर्शन विना हमारा मरणही होगा ॥ १ ॥

'मेरेको तुम ढूंढो मेरेको क्या दोष है यदि ऐसा कहो तो हमारा यह कहना है सो दर्शातेहैं '—

शरदुदाशये साधुजातस-
त्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ॥
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका
वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥ २ ॥

हे सुरतनाथ ! (संभोगपते) हे वरद !! (अभीष्ट देनेंवाले) शीतकालकी पुष्करिणी (तलावडियों) में उत्पन्न होनेंवाला जो सुंदर कमल तिसके उदरकी शोभाको हरनेंवाले नेत्रनकरके अमूल्य दासी हमारे प्राण लेकर मारनेवाले आपके इस लोकमें शस्त्रकरकेही क्या वध होताहै दृष्टिकरके नहीं होताहै इससे हमारे जीवनकेलिये आप हमारे दृष्टिके गोचर होय ॥ २ ॥

' यदि हम आपके मारनेंही योग्य होय तो पूर्व हमारी कृपाकरके आपदोंसे रक्षा कर अब दृष्टिकरके कामदेवको भेजकर क्यों हमारा घात करवातेहो यह आपके अनुचित है '—

विषजलाप्ययाद्व्यालराक्षसा-
द्वर्षमारुताद्वैद्युतानलात् ॥
वृषमयात्मजाद्विश्वतो भया-
दृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥ ३ ॥

हे ऋषभ ! (श्रेष्ठ) विषमयजल (कालीयह्रदजल) से नाश, अघासुर, इंद्रकृतवृष्टि, वायु, विद्युत्पातसे उत्पन्न होनेंवाला अग्नि, व्योमासुर और समस्तभय इन सबोंसे वारंवार आपसे रक्षित हुए हमारी अब क्यों उपेक्षा (परित्याग) करतेहो ? इससे अब शीघ्रही हमारी दृष्टिके गोचर हो ॥ ३ ॥

'विश्वके पालनकेलिये अवतार लेनेंवाले आपको भक्तोंकी उपेक्षा करना अत्यंत अनुचित है यह अपना आशय गोपिका दर्शातीहैं '-

न खलु गोपिकानन्दनो भवा-
नखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ॥
विखनसाऽर्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान्सात्त्वतां कुले ॥ ४ ॥

हे सखे! आप यशोदाके पुत्र नहींहो मिथ्याही लोकमें 'यशोदानंदन' कहतेहैं किंतु समस्त प्राणियोंके अंतःकरणके साक्षी हो पर ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे विश्वकी रक्षाकेलिये यादवोंके कुलमें अपने संकल्पसेही अवतार लियेहै. प्राकृतपुरुषकीनाईं आपका जन्म कर्माधीन नहींहै ॥ ४ ॥

'आपके भक्त जो हम हैं इससे हमारी चार प्रार्थना आप संपादन (सिद्ध) करो '-

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते
चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ॥
करसरोरुहं कान्त कामदं
शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥ ५ ॥

हे वृष्णिधुर्य! हे कांत !! संसारके भयसे आपके चरणमें प्रा-

---

१ बडे कुलमें उत्पन्न होनेवाले आपको हमारी पीडा दूर करनी युक्तही है ऐसा इस संबोधनसे सूचित भया.

प्त होनेंवाले अर्थात् शरणागत भक्तजन हमारे मस्तकपर अभय देनहार और मनोरथ पूर्ण करनहार तथा लक्ष्मीजीके हस्तकमलको ग्रहण करनहार अपना हस्तपद्म स्थापित करो अर्थात् अपने हस्तसे मेरे मस्तकको स्पर्श करो ॥ ५ ॥

व्रजजनार्तिहन्वीर योषितां
निजजनस्मयध्वंसनस्मित ॥
भज सखे भवत्किङ्करीः स्म नो
जलरुहाननं चारु दर्शय ॥ ६ ॥

हे व्रजजनार्तिहर[१]! हे वीर[२]!! हे निजजनस्मयध्वंसनस्मित[३]!!! (अपने आश्रितजनोंका गर्व स्मितमात्रकरकेही नाश करनेवाले) हे सखे[४]! अंतर्धान होनेंसे स्वतःही गर्वकी निवृत्तिवाली आपकी दासी जो हम हैं सो आप हमको भजो अर्थात् हमको अपने आश्रित करो प्रथम तो मनोहर अपना मुखकमल हमको दिखाओ ॥ ६ ॥

---

१ संपूर्ण व्रजवासिजनोंकी पीडा दूर करनेकेलिये अवतार लेनेवाले आपको हमारी पीडा दूर करनी अवश्यही है ऐसा इस संबोधनसे सूचित भया. २ इस संबोधनसे आश्रित पुरुषोंकी पीडा दूर करनेका सामर्थ्य सूचित भया. ३ इस संबोधनसे तुम्हारा गर्वही बडा दोष इससे उस दोषको दूर करनेकेलिये मैं अंतर्धान हुआ ऐसा कहे तो आपके आश्रितपुरुषोंका अपने स्मितमात्रसेही गर्वका नाश होताहै फिर अंतर्धान होनेका क्या प्रयोजन है ? यह आशय सूचित भया. ४ इस संबोधनसे हमारे मरणसे आपको दुःख होयगा यह आशय सूचित भया.

प्रणतदेहिनां पापकर्शनं
तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ॥
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं
कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥ ७ ॥

हे प्रियकांत! शरणागत देहधारियोंके पापको दूर करनहार तथा गौओंके पीछे चलनहार तथा सौभाग्यसे लक्ष्मीजीका स्थानभूत तथा कालीयसर्पके फणाओंके ऊपर अर्पित (स्थापित) ऐसा अपना चरणकमल हमारे कुचोंके ऊपर स्थापित करो और हमारे हृदयमें रहनेवाले कामका नाश करो ॥ ७ ॥

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया
बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ॥
विधिकरीरिमा वीर मुह्यती-
रधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः ॥ ८ ॥

हे पुष्करेक्षण! हे वीर! कोकिलादिशब्दकी तुल्य मनोहर वाक्यवाली ज्ञानिजनोंके हृदयको जाननेवाली आपकी वाणी-

१ यदि कहो कि पादस्थापनमात्रसेही हृद्गतकामका नाश कैसा होगा यह तो नहीं कहसकते क्योंकि सुखका प्रतिबंधक (रोकनेवाला) पापका दूर करनेवाला आपका चरणकमल है इसीसेही यह चरणकमलका विशेषण है. २ आपकी कृपादृष्टिसेही हमारे तापकी निवृत्ति होयगी और प्रकारसे नहीं होयगी यह इस संबोधनसे सूचित भया. ३ स्त्रीजाति हमारेमें वीरपणा युक्त नहीं यह इस संबोधनसे सूचितभया.

करके मोहको प्राप्त होनेवाली जो हम किंकरी (दासी) है हमको आपने अधरामृतसे जीवावो ॥ ८ ॥

'आपके विरहसे हमारा मरणही प्राप्त रहा परंतु आपके कथामृतका पान करावनेवाले सुकृतिजनोंने हम ठकलिये यह आशय गोपिका श्रीकृष्णजीसे दर्शातीहैं'—

तव कथाऽमृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम् ॥
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥ ९ ॥

हे भगवन्! संसारसे तप्त पुरुषोंका जीवनभूत तथा ब्रह्मवित्पुरुषोंनेभी स्तुत अर्थात् देवभोग्य अमृतसेभी अत्यंत उत्कृष्ट तथा संपूर्ण पापोंको दूर करनहार श्रवणमात्रसे मंगल देनहार सुशांत जो आपका कथारूपी अमृत तिसको जो विस्तारसे निरूपण करतेहैं वे पुरुष पूर्वजन्ममें बहुतसा दान करनेवाले रहे अर्थात् वे सुकृतिही हैं. तात्पर्य—जो केवल आपका कथामृतका निरूपण करतेहैं वेही अतिधन्य हैं और जो आपका साक्षात्कार करतेहैं उनको क्या कहना? इसीसे हम प्रार्थना करतेहैं कि तू हमारी दृष्टिके गोचर हो ॥ ९ ॥

'मेरी कथाश्रवणमात्रसेही तुम तृप्त हो मेरे दर्शनसे तुमको क्या फल है? यह तो नहीं कहसकते क्योंकि विलाससे क्षुभितचित्त हमको कथामात्रसे शांति नहींहै. यह आशय सूचित करतीहैं'—

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं
विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम् ॥
रहसि संविदो या हृदिस्पृशः
कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥ १० ॥

हे प्रिय! हे कुहक!! ध्यानमात्रसेही परमानंदका देनेवाला जो आपका हँसना, प्रेमपूर्वक देखना, और विहार (क्रीडा), हृदयको स्पर्शकरनेवाले परिहासवाक्य ये सब हमारे मनको क्षोभयुक्त करतेहैं इससे आपकी कथाके श्रवणमात्रसे हमको शांति नहीं ॥ १० ॥

'आपकेविषैं अत्यंतप्रेमार्द्रचित्त हम हैं फिर किस हेतुसे हमारे निमित्त कपट आचरण करतेहो यह आशय दर्शातीहैं'—

चलसि यद्व्रजाच्चारयन्पशून्
नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ॥
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः
कलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥ ११ ॥

हे नाथ! (स्वामिन्) जब आप गौओंको चरावतेहुए व्रजसे चलतेहो तब कमलकी तुल्य सुंदर अर्थात् कोमल आपका चरण शिल (कणिश) अर्थात् शूक, तृण, अंकुर, इन्होंकरके क्लेशितहुआ हमारे मनको अस्वस्थताको प्राप्त करताहै (हमारे मनको पीडा देताहै) अर्थात् आपके दुःखसे हम शंकितचित्त हैं ॥ ११ ॥

१ हमारे प्रेमका विषय आपको कपट करना युक्त नहीं यह दोनों संबोधनोंसे सूचित है.

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलै-
र्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् ॥
घनरजस्वलं दर्शयन्मुहु-
र्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥ १२ ॥

हे वीर! सायंकालमें नीलकुंतलों (काले केशों) करके आवृत तथा गौओंके रजकरके व्याप्त तथा भ्रमरमालाकरके आकुल जो पराग (पुष्परेणु) उसकरके व्याप्त जो कमल तत्तुल्य मुखको धारण करतेहुए और वारंवार दिखातेहुए हमारे मनमें केवल स्मर (काम) ही अर्पण करतेहो परंतु समागमसुख नहीं देतेहो ॥ १२ ॥

'अब कापट्य दूरकर और प्रकट होकर हमारा प्रार्थित सिद्ध करो यह कहतीहैं'—

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं
धरणिमण्डनं ध्येयमापदि ॥
चरणपङ्कजं शन्तमं च ते
रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥ १३ ॥

हे आधिहन्! हे रमण!! प्रणत (शरणागत) पुरुषोंका मनोरथ देनेवाला, ब्रह्माजीसे पूजित, पृथ्वीका भूषणरूप, आपदमें ध्यानमात्रसे आपत्तिका निवारक, सेवाकालमें परमआनंद-

१ इस संबोधनसे शूरवीर आपको कपट करना उचित नहीं यह सूचित भया. २ हमारी आधि (दुःख) आपसेही दूर होयगी यह इस संबोधनसे सूचित भया.

की उत्पत्ति करनेंवाला, कामसंतापको दूरकरनेवाला, आपका कमलतुल्य चरण हमारे स्तनोंके ऊपर अर्पण करो ॥ १३ ॥

सुरतवर्धनं शोकनाशनं
स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम् ॥
इतररागविस्मारणं नृणां
वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥ १४ ॥

हे वीर[१]! संभोगसुखको बढानेवाला, शोकका नाश करनेवाला, नादयुक्त वेणुवंशीसे भलेप्रकार चुंबित, मनुष्यजाति हमारेको धन, पुत्र, गृह, लोक, परलोकआदि पुरुषार्थोंमें जो प्रीति उसका विस्मरण करावनेंवाला ऐसा आपका अधरामृत हमारेको देवो अर्थात् अधरामृतका पान करावो ॥ १४ ॥

'क्षणमात्रभी आपके नहींदेखनेसे हमको दुःख होताहै और दर्शनसे सुख होताहै यह देखकर संपूर्ण वस्तुओंमें संगका त्याग करके संन्यासिजनोंकीनाईं हम आपको प्राप्त है अब क्यों हमारा त्याग करनेमें उत्साह करतेहो यह करुणापूर्वक गोपिका कहतीहै '—

अटति यद्भवानह्नि काननं
त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ॥
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते
जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम् ॥ १५ ॥

---

१ स्त्रीजाति हमारेको आपका अधरामृतका देनाही आपमें वीरपना है यह इस संबोधनसे सूचित है.

हे प्रिय! जब दिनमें वृंदावन जातेहो तब आपको नहीं देखनेवाले अस्मादृश प्राणिजनांको अर्धक्षण युगकेतुल्य बीतताहै फिर कथंचित् दिनके अंत (सायंकाल) में अत्यंत शोभायुक्त टेढे हैं केश जिसमें ऐसे आपके मुखको देखनेवाले हमारेसरीखे जनोंके नेत्रोंके पक्ष्म (पलक) करनेंवाला ब्रह्मा मूढही है क्योंकि पलक होनेंसे आपके दर्शनमें अंतराय हमारेको सहन नहींहै. इससे हे प्रिय! हमारी दृष्टिके गोचर क्यौं नहीं होताहै? दर्शनमें हमको बहोत सुख है ॥ १५ ॥

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवा-
नतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युताऽऽगताः ॥
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः
कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥ १६ ॥

हे अच्युत! (अखंडानंदस्वरूप) पति, पुत्र, वंशसंबंधि भाई बांधव इन सबोंको हम त्याग करके आपके समीपमें आयीहैं अब आपके आगमनको जाननेंवाली अथवा आपके गीतको जाननेवाली उच्चस्वरके गानेंसे मोहित और पतिआदिको ठगकरके आनेवाली हमको रात्रिमें आपके विना अन्यपुरुष और कौन है जो परित्याग करदेवै ॥ १६ ॥

' आपकरके त्यक्त हमारे हृद्रोगका दूर करनेका आपका दर्शनही निदान (कारण) है सो अपने समागम करकेही चिकित्सा करो '—

रहसि संविदं हृच्छयोदयं

प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ॥
बृहदुरःश्रियो वीक्ष्य धाम ते
मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥ १७ ॥

कामका है उदय जिसमें ऐसा जो आपके एकांतमें सांकेतिक चेष्टा (परिहासवाक्य) और हास्ययुक्त मुख प्रेमपूर्वक देखना और लक्ष्मीजीका स्थानभूत विशालवक्षःस्थल इन सबोंको देखकर आपके संबंधमें हमारी अत्यंत स्पृहा (इच्छा) होतीहै और वारंवार हमारा मन मोहित होताहै ॥ १७ ॥

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते
वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम् ॥
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां
स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥ १८ ॥

अंग! (हे प्रिय) तेरा अवतार व्रज, व्रजवासिजन और वनवासिजनोंके दुःख दूर करनेवाला है तथा विश्वके मंगल करनेवाला है इससे आपके संबंधमें स्पृहारूढ मनवाले हमारे हृदयके कामआदि रोगोंको नाश करनेवाला आपका संबंधही औषध है इसको हमारे अर्थ स्वल्पभी देवो यह हमारी प्रार्थना है ॥ १८ ॥

'अत्यंतप्रेमसे विह्वल होकर रोदन करतीहुई गोपिका अपना अखेरका अभिप्राय सूचित करतीहैं '—

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ॥

तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किंस्वित
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥ १९ ॥

हे प्रिय! जो यह तेरा सुकुमार चरणारविंद कठिन कुचोंके ऊपर मर्दनसे (आपके कोमलचरणमें हमारे कठिनकुच गडि न जाय इस हेतुसे) शंकितचित्त हुई हम शनैः शनैः (होले होले) हम धारण करतीरहीं तिस कोमलचरणसे वनमें विचरनेवाले आपका चरणकमल क्या अल्पपाषाण (पत्थर) आदिसे व्यथाको प्राप्त नहींहै? इससे यह विचार कर आपही है जीवन जिन्होंके ऐसे जो हम हैं सो हमारी बुद्धि मोहको प्राप्त होरहीहै ॥ १९ ॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा ॥
रुरुदुः सुस्वरं राजन्कृष्णदर्शनलालसाः ॥ २० ॥
तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ॥
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥ २१ ॥

इति श्रीमद्भागवतान्तर्गत–गोपीगीतं
समाप्तम् ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन्! श्रीकृष्णजीके दर्शनमें अत्यंतलालसावाली गोपियां जब उच्चस्वरसे रोदन करतीरहीं उससमय पीतांबरको धारण करनेवाले कौस्तुभमालाको धारण करनेवाले श्रीकृष्णजी उक्त गोपियोंके अगाडी प्रादुर्भूत होतेभये तासमय जगत्का मोहन करनेवाले कामदेवकोभी मोह

करनेवाले, अपने प्रिय श्रीकृष्णजीको देखकर जैसे प्राणके आनेसे करचरणआदि चेष्टावाले होजातेहैं तैसेही प्रीतिसे उत्फुल्लदृष्टिवाली समस्त गोपियां उत्थित (खडी) होतीभई तात्पर्य यह है—कि, उसकालमें गोपियोंको जो आनंद उत्पन्न हुवाहै सो आनंद निरूपण करनेमं ब्रह्माआदि देवतोंकोभी अशक्य है ॥ २० ॥ २१ ॥

इति श्रीमहावनशास्त्रिकृत—श्रीमद्भागवतान्तर्गत-
गोपीगीतभाषानुवादः समाप्तः ॥ २ ॥

॥ युगलाश्रयाय नमः ॥

अथ

युगलगीतप्रारम्भः ।

॥ श्रीशुक उवाच ॥

गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः ॥
कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी बोले—रात्रिमें श्रीकृष्णजीसे यथेच्छ विहार करनेसे परमानंदसमुद्रमें निमग्न गोपियोंको दिनमें श्रीकृष्णजी वनमें जानेसे उनके विरहसे उनमें आसक्तचित्त गोपियेंने श्रीकृष्णलीला गायकरके अत्यंत कष्टसे दिनोंको बितातीभई, सो गान निरूपण करतेहै ॥ १ ॥

॥ गोप्य ऊचुः ॥

वामबाहुकृतवामकपोलो
वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ॥
कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं
गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥ २ ॥
व्योमयानवनिताः सह सिद्धै-
र्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ॥
काममार्गणसमर्पितचित्ताः
कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः ॥ ३ ॥

गोपियां बोलीं—वामे भुजापे अर्पित(रक्खा) है वामकपोल जिन्हने और नाचनेवाली है भ्रुकुटी जिनकी ऐसे मुकुंद (श्रीकृष्ण) कोमल अंगुलियोंकरके आच्छादित होरहेहै सप्तस्वरके छिद्र जिसमें ऐसे अधरपर स्थित हुऐ वेणुको जब बजानेलगे तब आकाशमें गमन करनेवाली देवतानकी स्त्रियां अपने पतियोंकरके सहित कामबाणोंसे पीडित लज्जायुक्त हुई चारों ओर गिरेहुए वस्त्रोंका अनुसंधानरहित हुई गोपियां मोहको प्राप्त होतीभई तात्पर्य—ऐसे श्रीकृष्णजीका विरह हम कैसे सहन करै ॥ २ ॥ ३ ॥

हन्त चित्रमबलाः शृणुतेदं
हारहास उरसि स्थिरविद्युत् ॥
नन्दसूनुरयमार्तजनानां
नर्मदो यर्हि कूजितवेणुः ॥ ४ ॥

वृन्दशो व्रजवृषा मृगगावो
वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् ॥
दन्तदष्टकवला धृतकर्णा
निद्रिता लिखितचित्रमिवासन् ॥ ५ ॥

हे अबला! यह बडा आश्चर्य तुम सुनो हारकीनाईं विशद (सुंदर) हासवाले अथवा वंशीके बजानेसे नीचे वदन करके हसन करनेवाले अपने हारोंकेविषैं प्रकाशमान हासवाले अथवा हारयुक्त वक्षःस्थलमें शोभायमान हासवाले अथवा हारोंके हासकी नाईं विशद हासवाले बिजलीकीनाईं वक्षस्थलमें लक्ष्मीवाले अपने विरहसे पीडित अस्मदादिक जनोंको सांकेतिक चेष्टा देनेवाले नंदके पुत्र श्रीकृष्णजी जब वंशी बजानेलगे तब व्रजमें वेणुके वादनसे हृतचित्तवाले बैल, मृग, गौओंके समूहके समूह दंतनसे तृणको काटके उतनाही मुखमें लियों २ काननको ऊंचे करके सोनेवाले पुरुषकीनाईं भित्तिपर लिखेहुए चित्रकीनाईं स्थित होतेभये ॥ ४ ॥ ५ ॥

बर्हिणस्तबकधातुपलाशै-
र्बद्धमल्लपरिबर्हविडम्बः ॥
कर्हिचित्सबल आलि सगोपै-
र्गाः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः ॥ ६ ॥
तर्हि भग्नगतयः सरितो वै
तत्पदाम्बुजरजोनिलनीतम् ॥
स्पृहयतीर्वयमिवाबहुपुण्याः

प्रेमवेपितभुजास्तिमितापः ॥ ७ ॥

हे आलि! (हे सखि) मोरपुच्छ, गेरू, मैनशिल, पल्लव इन्होंसें मल्लकीतुल्य स्वरूपकरके बलदेवजी तथा गोप इन्होंकरके सहित श्रीकृष्णजी जबकब वेणुसे गौओंको जिस देशमें बुलावतेंहै तब तिस देशमें वंशोके शब्दसे जैसे आपके चरणारविंदके रजकी इच्छा करनेवाली प्रेमकरके कंपित भुजावाली नेत्रनमें स्तिमित (निश्चल) जलवाली हम भग्नगति है तैसेही वायुकरके प्रापित आपके चरणरजकी इच्छा करनेवाली प्रेमकरके कंपित भुजस्थानीय तरंगोंवाली निश्चलजलवाली नदियां चलनेसे बंद होगईं परंतु आपके चरणरजको प्राप्त न भईं क्योंकि आपके चरणरजके प्राप्तिमें अधिकपुण्य अपेक्षित है ॥ ६ ॥ ७ ॥

अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य
आदिपूरुष इवाचलभूतिः ॥
वनचरो गिरितटेषु चरन्ती-
र्वेणुनाऽऽह्वयति गाः स यदा हि ॥ ८ ॥
वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं
व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः ॥
प्रणतभारविटपा मधुधाराः
प्रेमहृष्टतनवः ससृजुः स्म ॥ ९ ॥

आदिपुरुष (पुरुषोत्तम) कीनाईं अचललक्ष्मीवाले गोप(ग्वाल) बाल देवता जिनके यशको गावैं ऐसे वनमें विचरनेवाले गोवर्द्धनके शिखरपर चरनेवाली गौओंको जब वंशीकेद्वारा नाम ले

लेकर बुलावतेहै तब पुष्पफल इन्होंकरके युक्त भारकरके नी-
चेने झुकोहुई शाखावाली रोमांचितकीनाई प्रेमकरके हर्षित दे-
हवाली वनलता तथा वनगततरु (वृक्ष) ये सब प्रकाशमान
विष्णुको मानो सूचनही करतेहै क्या ? ऐसे मधुधारा (मकरंद-
रस) की वृष्टि करतेभये ॥ ८ ॥ ९ ॥

दर्शनीयतिलको वनमाला-
दिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तैः ॥
अलिकुलैरलघुगीतमभीष्ट-
माद्रियन्यर्हि सन्धितवेणुः ॥ १० ॥
सरसि सारसहंसविहङ्गा-
श्चारुगीतहृतचेतस एत्य ॥
हरिमुपासत ते यतचित्ता
हन्त मीलितदृशो धृतमौनाः ॥ ११ ॥

दर्शनीयतिलकवाले अथवा दर्शनीय (सुंदर) स्त्रियोंमें मु-
ख्य तथा वनमालाओंके मध्यमें दिव्यगंधतुलसीके मकरंदर-
सकरके मत्त अलिकुल (भ्रमरसमूह) उच्च अनुकूल गानको
आदरपूर्वक ग्रहण करतेहुए श्रीकृष्णजी अधरके ऊपर बासुरी-
को धरके जब बजानेलगे तब सरोवरनमें सारसहंसपक्षी सुंदरगा-
नसे मोहित हो उस स्थानमें आखें मूंदे मौन धारण करे चित्त
रोकके वहां आकर श्रीकृष्णभगवानके समीप स्थित हो-
तेभये ॥ १० ॥ ११ ॥

सहबलः स्रगवतंसविलासः

सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः ॥
हर्षयन्यर्हि वेणुरवेण
जातहर्ष उपरम्भति विश्वम् ॥ १२ ॥
महदतिक्रमणशङ्कितचेता
मन्दमन्दमनुगर्जति मेघः ॥
सुहृदमभ्यवर्षत्सुमनोभि-
श्छायया च विदधत्प्रतपत्रम् ॥ १३ ॥

हे व्रजदेव्यः ! (हे गोप्यः) मालाओंकरके निर्मित (बना-
येहुए) कर्णभूषणोंकरके शोभायमान गोवर्धनके शिखरपर वि-
राजमान विश्वको हर्षित करतेहुए स्वयं आप उत्पन्न हर्षयुक्त हुए
बलदेवजीकरके सहित वेणुको शब्दसे जब पूरण करतेहै तब श्री-
कृष्णजीके अपराधसे शंकितचित्त हुआ मेघ नहीं तो अग्रभागमें
आया, न उच्चस्वरसे गर्जा, किंतु वेणुके शब्दके पश्चात् मंद मंद
गर्जेहै और विश्वकी पीडा हरण और कृष्णवर्णके साम्यसे सु-
हृद (सखा) श्रीकृष्णजीके ऊपर आतप दूर करनेकेलिये छा-
यासे छत्र करताहुआ मेघ पुष्पोंकी वृष्टि करै ॥१२॥१३॥

विविधगोपरसेषु विदग्धो
वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः ॥
तव सुतः सति यदाधरबिम्बे
दत्तवेणुरनयत्स्वरजातीः ॥ १४ ॥
स वनशस्तदुपधार्य सुरेशाः
शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ॥

कवय आनतकन्धरचित्ताः

कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥ १५ ॥

हे यशोदे! नाना गोपक्रीडाओंकेविषैं निपुण बिंबतुल्य अधरके ऊपर स्थापित वेणु तेरा पुत्र नहीं तो किसीसे श्रवण करे नहीं किसीसे सीखे स्वयं (आपही) सीखेहुए निषाद ऋषभआदि स्वरोंके आलापभेद जब वंशीद्वारा प्रकट करनेलगे तब और जिस स्थलसे मंद्र-मध्यम-तार भेदसे वंशीकी ध्वनि आतीहै तिस प्रदेशमें नीचेको नम्र होरहीहै ग्रीवा जिन्होंकी और नहीं निश्चित है स्वरोंका भेद जिन्होंने ऐसे अतिनिपुण इंद्र, रुद्र, ब्रह्माआदि देवता ये सब उस स्वरभेदोंको श्रवण कर मोहको प्राप्त होतेभये ॥ १४ ॥ १५ ॥

निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्र-

नीरजाङ्कुशविचित्रललामैः ॥

व्रजभुवः शमयन्खुरतोदं

वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥ १६ ॥

व्रजति तेन वयं सविलास-

वीक्षणार्पितमनोभववेगाः ॥

कुजगतिं गमिता न विदामः

कश्मलेन वसनं कबरं वा ॥ १७ ॥

हे गोप्यः! ध्वज, वज्र, शंख, अंकुश, ये है चित्रचिह्न जिनमें ऐसे जो अपने चरणकमलोंकरके व्रजभूमिका गौओंके खुरसे खेद (व्यथा) को दूर करतेहुए गजके तुल्य गतिवाले

जब वंशी बजानेलगे तब विलासपूर्वक कटाक्षपातसेही अर्पण कियाहै कामदेव जिन्होंकेविषैं ऐसी वृक्षोंकी गतिको प्राप्त अर्थात् निश्चेष्टहुईं२ हमको मोह करके वस्त्र, वेणी (चोटी) इनकी सूध नहींहै ॥ १६ ॥ १७ ॥

मणिधरः क्वचिदागणयन्गा

मालया दयितगन्धतुलस्याः ॥

प्रणयिनोऽनुचरस्य कदांसे

प्रक्षिपन् भुजमगायत यत्र ॥ १८ ॥

क्वणितवेणुरववञ्चितचित्ताः

कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः ॥

गुणगणार्णमनुगत्य हरिण्यो

गोपिका इव विमुक्तगृहाशाः ॥ १९ ॥

हे गोप्यः! गौओंके गणनेके वास्ते स्मरणि (सुमरणिमाला) को धारण करनेवाले प्रियगंध तुलसीकी मालाकरके युक्त सुमरणिकरके गौओंको चारों ओरसे गिननेवाले अपने प्रियअनुचरके स्कंध (खांदे) पर हाथको स्थापित करतेहुए जब कदाचित् वंशीसे गातेहै तब शब्दायमानवेणुसे हृतचित्त कालेमृगकी भार्या हरिणियां माधुर्यआदि गुणके समुद्र श्रीकृष्णजीके पास आकर जैसे चंचलस्वभाववाली वनमें पतियोंके विना विचरनेवाली गृहमें आशा छोडकर हम आयींहैं तैसेही श्रीकृष्णजीके चारों तरफसे आवृत कर स्थित होतीभईं ॥ १८ ॥ १९ ॥

कुन्ददामकृतकौतुकवेषो

गोपगोधनवृतो यमुनायाम् ॥
नन्दसूनुरनघे तव वत्सो
नर्मदः प्रणयिनां विजहार ॥ २० ॥
मन्दवायुरुपवात्यनुकूलं
मानयन्मलयजस्पर्शेन ॥
बन्दिनस्तमुपदेवगणा ये
वाद्यगीतबलिभिः परिवव्रुः ॥ २१ ॥

हे अनघे ! हे यशोदे !! कुंदपुष्पोंकी बनाईहुई मालाओंकरके अलंकार कर गोप और गोधन इन्होंकरके आवृत (परिवारेहुए) प्रेमवाले गोपजनोंको हर्ष देतेहुए यह नंदके पुत्र जब यमुनाके तटपर क्रीडा करतेभये तब चंदनके गंधयुक्त शीतलस्पर्शसे श्रीकृष्णजीका मान करताहुआ मंद वायु अनुकूल चलनेलगा और बंदिजन, गंर्धवादि जन, वाद्य, गीत, बलि (भेटपूजा) श्रीकृष्णजीकी उपासना करतेभये अर्थात् चारों ओरसे स्थित होतेभये ॥ २० ॥ २१ ॥

'इतने कालमें आनेवाले श्रीकृष्णजीको गोपियां देखकर हर्षयुक्त होकर परस्पर कहनेलगीं'—

वत्सलो व्रजगवां यदगध्रो
वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः ॥
कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनान्ते
गीतवेणुरनुगेडितकीर्तिः ॥ २२ ॥
उत्सवं श्रमरुचाऽपि दृशीना-

मुन्नयन्खुररजश्छुरितस्रक् ॥
दित्सयैति सुहृदाशिष एष
देवकीजठरभूरुडुराजः ॥ २३ ॥

व्रजमें स्थित गौओंकीनाईं अनुकंपायोग्य हमारे हित करनेवाले तथा हमारी रक्षाकेलिये गोवर्धनपर्वतको उठावनेवाले ब्रह्माआदि देवताओंकरके पूजितचरणवाले अनुगों (गोपों) के कथितकीर्तिवाले गीतयुक्त वंशीवाले सायंकालमें सब गोधनको इकठेकर श्रमयुक्त कांतिकरके हमारे नेत्रोंको हर्षयुक्त करतेहुए गौओंके खुररजोंकरके युक्त मालाको धारण करनेवाले देवकीके जठर (उदर) में होनेवाले हे आलि! यह चंद्ररूप हमारे मनोरथोंकी सिद्धि करनेकेलिये यह श्रीकृष्णजी आताहै तुम देखो ॥ २२ ॥ २३ ॥

मदविघूर्णितलोचन ईष-
न्मानदः स्वसुहृदां वनमाली ॥
बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं
मण्डयन्कनककुण्डललक्ष्म्याः ॥ २४ ॥
यदुपतिर्द्विरदराजविहारो
यामिनीपतिरिवैष दिनान्ते ॥
मुदितवक्त्र उपयाति दुरन्तं
मोचयन्व्रजगवां दिनतापम् ॥ २५ ॥

दिनके अंत (सायंकाल) में जैसे चंद्रमा दिनतापको दूर करताआताहै तैसे मदकरके विह्वलित नेत्रनवाले बदर (बेर)

कीनाईं श्वेतपीत वदन (मुख) वाले अपने भक्तजनोंका सन्मान करनेवाले वनपुष्पोंकी मालाको धारण करनेवाले कनककुंडलोंकी कांतिकरके अपने कोमल गंड (कपोल) को शोभायमान करतेहुए तथा गजश्रेष्ठकीनाईं गतिवाले प्रसन्नवदन हुए व्रजगौओंके तथा हमारे दिनके विहरसे उत्पन्न होनेवाले तापको दूर करतेहुए यह श्रीकृष्णजी यादवोंके पति समीप आतेहैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एवं व्रजस्त्रियो राजन्कृष्णलीलानुगायतीः ॥
रेमिरेऽहस्सु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्भागवतान्तर्गत-युगलगीतं समाप्तम् ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन् ! श्रीकृष्णजीके हुए २ है जीवन जिन्होंका और उनमेंही है संकल्पात्मक मन जिन्होंका ऐसे बडे उत्सववाली व्रजकी स्त्रियां (गोपियां) दिनमें श्रीकृष्णजीका विरहभी रहा परंतु उक्तप्रकारसे श्रीकृष्णजीकी लीलाको गातीहुईं रमण करतीभईं ॥ २६ ॥

इति श्रीमहावनशास्त्रिकृत-श्रीमद्भागवतान्तर्गत-युगलगीतभाषानुवादः समाप्तः ॥ ३ ॥

॥ श्रीभ्रमररूपाय नमः ॥

अथ भ्रमरगीतम्.

'एकसमय व्रजमें आनेवाले श्रीकृष्णजीके सेवक उद्धवजीको देखकर श्रीकृष्णजीके समागमका चितवन करतीहुईं गोपी उससमय एक भ्रमरको देखकर उद्धवजीके प्रति कुछ कहना अनुचित समझकर भ्रमरमेंही दूतबुद्धिकरके उद्धवके उद्देशसे भ्रमरको कहनेलगीं '—

॥ गोप्य ऊचुः ॥

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः
कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः ॥
वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं
यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥ १ ॥

हे भ्रमर ! हे कितवबंधो ! ! (वंचक श्रीकृष्णजीके कार्यसाधक) हमारी सपत्नी (सौंकनी) के कुचोंकरके आलिंगनदशामें मर्दित (मलीहुई) मालामें कुचोंके संबंधसे प्राप्त (लगाहुआ) कुंकुम (केशर) से युक्त अपने श्मश्रुओं (मुखके केशों) करके हमारे चरणको स्पर्श मतकर यदि कहो तुह्मारे प्रसन्नताके वास्ते श्रीकृष्णजीका भेजाहुआ मैं तुह्मारे चरणका स्पर्श करताहूं इससे मेरेको क्या दोष है ? यह नहीं कहसकते क्योंकि वह श्रीकृष्ण व्रजपतित्व त्यागके याद-

वोंका पति हुआ, सो हे भ्रमर! उस श्रीकृष्णजीसे मान लेनेवाली मथुरापुरीमें रहनेवाली स्त्रियोंकीही प्रसन्नता कर, वनमें रहनेवाली हमारी प्रसन्नतासे क्या फल है? जिसका ऐसा (कुचोंके कुंकुमयुक्तश्मश्रुवाला) तू दूत है तिस श्रीकृष्णजीके यदुसभामें उपहास (ठट्ठा) का स्थानही तू समझाजायगा ॥ १ ॥

'यदि कहो उस श्रीकृष्णने तुह्मारा क्या अपकार कियाहै? जिससे तुम मेरा तिरस्कार करतीहो ऐसे प्रश्नसे गोपिका अपना अभिप्राय दर्शातीहैं'—

सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा
सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान् भवादृक् ॥
परिचरति कथं तत्पादपद्मं तु पद्मा
ह्यपिवत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः ॥ २ ॥

हे वंचकके कार्यसाधक! जैसा कृतघ्न तू पुष्परसका पान करके पुष्पोंका त्याग कर देताहै तैसेही वेद और लोककी मर्यादाको भुलावनेवाला अपने अधरामृतका एकवार पान करवाके तत्कालही वह वंचक श्रीकृष्ण हमको त्यागताभया अर्थात् जिस सुखके लोभसे दोनों लोक हमारे नष्ट होगये वह सुखभी हमको प्राप्त नहींहुआ प्रत्युत सर्वस्व हमारी हानिही हुई अहो! आश्चर्य यह है कि, परमचतुर लक्ष्मीजो उस कृतघ्नके चरणकमलकी कैसी परिचर्या (सेवा) करतीहै. अथवा ऐसाही संभव है कि उत्तमश्लोक नारदादिकके श्लाघावचनोंकरके आकृ-

ष्ट चित्त हुई २ उनके पादपद्मकी सेवा करतीहोगी इससे और तो कुछ हेतु नहींहै ॥ २ ॥

'हमारे प्रसन्नताकेवास्ते झंकारशब्दसे श्रीकृष्णजीके चरितको गाताहै ऐसा मान अपना अभिप्राय सूचित करतीहैं'—

किमिह बहु षडङ्घ्रे गायसि त्वं यदूना-
मधिपतिमगृहाणामग्रतो नः पुराणम् ॥
विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसङ्गः
क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः ॥ ३ ॥

हे षडंघ्रे! (छः पदोंवाले) उस कपटीके वास्तेही गृहको त्यागनेवाली हमारे अगाडी उस यदुपति श्रीकृष्णके चरितको क्यौं बहुत गाताहै? यह तो कुछ नवीन नहींहै कि जिसके श्रवणसे आनंद होय यह चरित तो जूनाही है हमको बहुतसा अनुभूत है यदि तूं कुछ प्रीतिकी इच्छा करताहै तो अर्जुनके सखा श्रीकृष्णकी सखियां (स्त्रियों) के अगाडी उस श्रीकृष्णजीका प्रसंगका गान करो वेही उस गानसे प्रसन्न हुई २ तेरे वांछितको संपादन करेंगी कारण उस श्रीकृष्णजीके आलिंगनसे उनकेही कुचोंकी पीडा दूर हुईहै ॥ ३ ॥

'यदि भ्रमर ऐसा कहेगा कि पुरस्त्रियां तो उसको सुलभ होय तो मेरे वांछित सिद्ध करेंगी पर वेही उसको दुर्लभ है इससे तुह्मारे प्रसन्नताकेलिये उस तुह्मारे प्राणप्रियने मैं भेजाहुआ हूं

१ इस संबोधनसे अन्यत्र जानेके साधक तेरे चरण फिर तू अन्यत्र क्यौं नहीं जाताहै? हमको उस कपटीके चरितको गाके क्यौं त्रास देताहै? यह सूचित भया.

ऐसे प्रश्नपर गोपी अपना अभिप्राय दर्शातीहैं'—

दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तद्दुरापाः
कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः स्युः ॥
चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का
अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः ॥ ४ ॥

हे भ्रमर! स्वर्ग, भूलोक, रसातल इन लोकोंमें जितनी प्रियस्त्रियां हैं उन्होंमें उस कपटयुक्त मनोहर हासपूर्वक भोगआदिको सूचन करनेवाले भ्रुकुटियोंको चलावनेवाले कपटी श्रीकृष्णको कोईभी स्त्री दुर्लभ नहींहै क्योंकि जिसके चरणरजको संपूर्ण संपदाओंकी अधिष्ठात्री (मालिक) लक्ष्मीजीही नित्य उपासना करतीहै फिर हमारी तो क्या गणना है? यदि तू कहेगा कि पूर्व तुह्मारा उसने क्यों अंगीकार कियाथा तो हम ऐसा कहतेहै, हे भ्रमर! दीनोंके ऊपर कृपाकरनेवालोंकोही उत्तम श्लोक (बडा यशवाला) कहतेहैं अर्थात् हमारे सुखकेलिये हमारा स्वीकार नहींकिया किंतु अपने यशके विस्तारकेलियेही हम दीनास्त्रियोंका स्वीकार कियाथा. नहीं तो हमको व्रजमें त्यागके मथुरापुरीमें क्यों जाता? ॥ ४ ॥

'यह भ्रमर उस कपटीके अपराधकी क्षमा करवावेगा इस लियेही हमारे चरणका स्पर्श करताहै ऐसा जानकर गोपी कहतीहै'—

विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चाटुकारै-
रनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात् ॥
स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका

व्यसृजदकृतचेताः किं नु सन्धेयमस्मिन् ॥५॥

हे भ्रमर! अपने शिरके ऊपर बलात्कारसे स्वीकृत हमारे चरणको तू छोडदे क्योंकि उस मुकुंदसे सीखकर आनेवाला तथा दूतकर्म और प्रियवचन इन्होंकरके प्रार्थना करनेमें चतुर तेरा मैं संपूर्ण कपट जानतीहूं तू उस कपटीकीनाईं विश्वासयोग्य नहीं यदि कहो उसने तेरा क्या अपराध कियाहै? जिससे तू उनका तिरस्कार करतीहै, इस प्रश्नका उत्तर यह है कि, हे भ्रमर! जिसकेलिये हमने पुत्र, पति, लोक, धर्मसाध्य स्वर्गादिकोंको त्यागनेवाली हमको इस व्रजमें त्यागकर अन्यत्र चलागया इससे अधिक और दूसरा कौनसा अपराध है. हमने जानलियाहै कि वह कृतघ्न (करीखोय) है इससे इस कृतघ्नके विषैं संधि (मिलाप) उचित नहींहै ॥ ५ ॥

'हे भ्रमर! वह केवल कृतघ्न नहींहै किंतु क्रौर्यआदि गुणोंकरके युक्तभी है यह दर्शातीहै'—

मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा
स्त्रियमकृतविरूपां स्त्रीजितः कामयानाम् ॥
बलिमपि बलिमत्त्वाऽऽवेष्टयत् ध्वाङ्क्षवद्य-
स्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथाऽर्थः ॥ ६ ॥

हे भ्रमर! व्याधकीनाईं सुग्रीवको अगाडी करके आप छिपकर विनाही अपराध वालीको जो कपटी रामावतारमें मारताभया तथा सीताके परतंत्र हुआ अपनेमें आसक्तचित्तवाली शूर्पणखाके कर्णनासिकाको छेदन करताभया तथा वामनरूपसे

बलिराजाकी समर्पित भूम्यादिपूजाको ग्रहण करके जैसे काक कुछ खाकरके फिर अपने अन्न देनेवालोंकोही दुःख देताहै तैसेही पाशोंकरके बलिराजाका बंधन करताभया तिस श्रीकृष्णकी मैत्रीसे हमको क्या प्रयोजन है? हे भ्रमर! जो तू कहे कि, उस कपटीकी कथा क्यों तुम कहतीहो औरही अन्य किसीकी कथा कहो तो हमारा यह कहनाहै. हे भ्रमर! उसकी कथा दुस्त्यज है (कपटीकी कथा ऐसीही है जिसकी त्याग न होवे) हम क्या करें उसकी कथा विना एक क्षणभी हमारा बीतता नहीं ॥ ६ ॥

'केवल उसकी कथाकरके हमही विक्षिप्त नहींहै बहुतसे जन विक्षिप्त (मोहित) होरहेहैं'--

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्
सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः ॥
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना
बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति ॥ ७ ॥

हे भ्रमर! जिस श्रीकृष्णके अनुचरित (लीला) अर्थात् परमानंदको उत्पन्न करनेवाला कर्णोंको अमृतरूप तिसके एक कणको एकवार सेवन करनेसेही दूर होगयेहैं क्षुत्पिपासाआदिक जिन्होंके ऐसे अचेतनप्राय बहुतसे जन शीघ्रही गृहमें स्थित दुःखित कुटुंब (पुत्रपौत्रादि) को त्यागकर भोगहीन हुए पक्षियोंकीनाई घरघर भीक मांगतेहैं ॥ ७ ॥

'यदि तू कहै कि तुम ऐसी विचक्षण उसके वशमें कैसी होगयीं तो यह हमारा कहना है सो सुनो'—

वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं श्रद्दधानाः
कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः ॥
ददृशुरसकृदेतत्तन्नखस्पर्शतीव्र-
स्मररुज उपमन्त्रिन् भण्यतामन्यवार्ता ॥ ८ ॥

हे भ्रमर! जैसे अज्ञानी कालेमृगकी स्त्री हरिणी व्याधके मधुरगानको श्रवण करके मोहित हुई उसके समीपमें प्राप्त होतीहै अर्थात् बाणवधआदि दुःखको अनुभव करतीहै तैसेही उस कुटिलके वचन अमृततुल्य मानतीहुईं तथा उस कपटीके नखस्पर्श करके तीव्र कामपीडावाली हमको बारंबार ऐसा दुःखका अनुभव हुआ है, सो हे उपमंत्रिन्! उसकी वार्ता दुःखकी स्मारक है औरकी बात कहो अर्थात् उस कपटीकी मत कहो ॥ ८ ॥

'ऐसे सुन जरा दूर जाकर फिर आतेहुए भ्रमरको गोपिका कहनेलगी'—

प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं
वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेऽङ्ग ॥
नयसि कथमिहास्मान् दुस्त्यजद्वन्द्वपार्श्वं
सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते ॥ ९ ॥

हे प्रियमित्र! (श्रीकृष्णके सखा) जो तू उस श्रीकृष्णका प्रेषित (भेजाहुआ) आयाहै तो हे भ्रमर! मेरा पूजनीय है सो

जो तेरी इच्छा होय सो तू वर मांग. यदि तू उस श्रीकृष्णजीके समीपमें प्राप्त हमको प्राप्त करनेको उत्कंठित है, तो हे सौम्य! तू विचार कर कि जिसके वक्षःस्थलमें निरंतर लक्ष्मीजी विराजमान है उसके समीपमें हमको कैसे लेजावेगा अर्थात् जब-तक लक्ष्मीजी वक्षःस्थलमें स्थित है तब हमसे क्या प्रयोजन है? क्यौंकि उस कपटीको लक्ष्मीजीका सहवास दुस्त्यज है॥९॥

'प्रणयकोपको त्यागकर उद्धवकेविषैं अपना स्नेह सूचन करतीहुई भ्रमरके प्रति कहनेलगीं'—

अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनास्ते
स्मरति सपितृगेहान्सौम्य बन्धूंश्च गोपान्॥
क्वचिदपि स कथा नः किङ्करीणां गृणीते
भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्नि धास्यत्कदा नु॥ १०॥

हे सौम्य! वह नंदका पुत्र पूर्वविद्या ग्रहण करनेकेलिये गुरुकुलमें गयारहा यह श्रवणकियाथा परंतु गुरुगृहसे आकर अब क्या वह मथुरामें है और मातापिता गृहसहित गोपोंको क्या वह स्मरण करताहै? और कदाचित् किंकरीगण हमारी वार्ता कहताहै अर्थात् हमारा वृत्त पूंछकर कुछ मनोरथ करताहै और हे भ्रमर! कब वह सुगंधयुक्त अपनी भुजाको हमारे मस्तकपर धरेगा॥ १०॥

॥ श्रीशुक उवाच॥

अथोद्धवो निशम्यैवं कृष्णदर्शनलालसः॥
सान्त्वयन्प्रियसन्देशैर्गोपीरिदमभाषत॥ ११॥

इति श्रीमद्भागवतान्तर्गत-भ्रमरगीतं समाप्तम्॥ ४॥

श्रीशुकदेवजी कहतेहैं—हे राजन्! श्रीकृष्णजीके दर्शनमें औत्सुक्यवाली गोपियोंको देखकर प्रिय श्रीकृष्णजीके संदेशोंसे गोपियोंको उद्धवजी वचन बोले अहो हे गोप्यः! तुम पूर्णपुरुषार्थ (प्रयोजन) वाली हो और तुम लोकोंमें पूजनेयोग्य हो क्यौंकि सर्वथा तुह्मारे मनकी वृत्ति वासुदेव (नंदपुत्र) श्रीकृष्णमेंही स्थिर है इससे तुमको धन्य हैं ऐसा दृढविश्वास योगिजनोंकाभी नहींहै. श्रीकृष्णजीमें अनुपमप्रीतिवाले तुह्मारा दर्शनकर मैं अपनेको कृतार्थ मानताहूं॥ ११॥

इति श्रीमहावनशास्त्रिकृत-श्रीमद्भागवतान्तर्गत—
भ्रमरगीतभाषानुवादः समाप्तः॥ ४॥

॥ श्रीश्रुतिप्रतिपाद्याय नमः॥

अथ
श्रुतिगीतम्.

'सृष्टिके समयमें श्रीनारायणके प्रथम श्वाससे जो श्रुतियां निकलीहैं वे जैसे शयन करनेवाले चक्रवर्तिराजाको बंदिजन प्रातःकालके समय आकर उसके पराक्रमके सूचक वचनों-

करके जगावतेहैं तैसे परमात्माको पराक्रम गुणादिसूचक वा-क्योंसे बोधन करतीहैं'—

॥ श्रुतय ऊचुः ॥

जय जय जह्यजामजितदोषगृभीतगुणां
त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः ॥
अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते
क्वचिदजयात्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः ॥ १ ॥

श्रुतियां बोलीं—हे अजित! आपका जय हो! जय हो! स्थावरजंगमात्मक शरीरक जीवोंकी वेश्याकीनाईं परपुरुषोंको ठगनेकेलिये गुणोंको ग्रहण करनेवाली अविद्याको नाश करो. हे अखिलशक्त्यवबोधक! (अंतर्यामिस्वरूपसे जीवोंकी इंद्रियशक्तिके ज्ञापक) आप स्वरूपसे समस्तऐश्वर्यआदि गुणयुक्त हो कारण सृष्टयादिके समय संकल्पकरके क्रीडा करनेवाले समस्तगुणयुक्त आपकोही सब वेद प्रतिपादन करें ॥ १ ॥

' यदि कहो कि इंद्रआदिक देवताओंकोभी श्रुतियां प्रतिपादन करतीहैं यह नहीं कहसकते क्योंकि " सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति " इत्यादि श्रुतिपूर्वक समस्तश्रुतियां इंद्रादिस्वरूप आपकोही प्रतिपादन करतींहैं'—

बृहदुपलब्धमेतदवयन्त्यवशेषतया
यत उदयास्तमयौ विकृतेर्मृदि वा विकृतात् ॥
अत ऋषयो दधुस्त्वयि मनोवचनाचरितं
कथमयथा भवन्ति भुवि दत्तपदानि नृणाम् ॥२॥

यह दृढ स्थावरजंगमात्मक सब जगत् ब्रह्मात्मकहीं है ऐसा श्रुतियां जानतींहैं क्योंकि समस्त जगत्के नाश हुएपर एक आपही अवशेष (बाकी) रहतेहो जैसे मृत्तिकाके सकाशसे घटादिकार्यकी उत्पत्ति और उसीहीमें लय होके मृत्तिकाही शेष रहतीहैं तैसेही विकाररहित आपसेही इस जगत्की उत्पत्ति और आपमेंही लय होताहै इसीसे मंत्र और मंत्रद्रष्टाने आपमेंही मनवचनका तात्पर्य निश्चय किया पृथक् विकारोंमें नहींकिया " येप्यन्यदेवता भक्ता यद्यप्यन्यधियः प्रभो। सर्व एव भजन्ति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम् " इत्युक्तेः। जैसे मनुष्य अपने चरण मृत्तिका पाषाण ईंट इनके ऊपर धरतेहैं परंतु भूमीसे पृथक् नहींहै इसीसे विकारजातको कहनेवाले समस्त वेद सर्वशरीरक आपकोही परमार्थरूपसे प्रतिपादन करतेहैं ॥ २ ॥

' सर्वात्मक भगवान्का भजन करनेवाले पुरुषोंको क्या फल होताहै इस अपेक्षामें सब संतापनिवृत्तिरूप फलही कैमुतिकन्यायसे श्रुतियां दर्शातींहैं'—

इति तव सूरयस्त्र्यधिपतेऽखिललोकमल-
क्षपणकथामृताब्धिमवगाह्य तपांसि जहुः ॥
किमुत पुनः स्वधामविधुताशयकालगुणाः
परम भजन्ति ये पदमजस्रसुखानुभवम् ॥३॥

हे त्र्यधिपते! (त्रिगुणमायामृगनर्तक) विवेकिजन आपको अखिललोकके मल नाश करनेवाली कथारूपी अमृतसमुद्रको सेवन करके आध्यात्मकादि दुःखोंको त्यागतेभये जब आपकी

कथा श्रवणकीर्तनादिमात्रसेही सब ताप निवृत्त होजातेहैं. तब हे पुरुषोत्तम! फिर आपके स्वरूपका स्मरण करके अंतःकरण करके गुणरागादिक, कालके गुण, जरादिक देहके धर्म कृशतादिक, प्राणके धर्म क्षुधाआदिक, ये जिनके निवृत्त होगयेहैं ऐसे निरंतर ज्ञानानंदैकस्वरूपको जो भजतेहैं उनके सब ताप निवृत्त होजातेहैं इसमें क्या आश्चर्य है? ॥ ३ ॥

'उक्त विषयकोही अन्वयव्यतिरेकसे दृढ करतीहैं'—

दृतय इव श्वसन्त्यसुभृतो यदि तेऽनुविधा
महदहमादयोण्डमसृजन्यदनुग्रहतः ॥
पुरुषविधोन्वयोत्र चरमोन्नमयादिषु यः
सदसतः परं त्वमथ यदेष्ववशेषमृतम् ॥ ४॥

हे भगवन्! जो प्राणी आपके भक्त हैं वेही सफल जीवनयुक्त हैं और जो आपके भक्त नहींहैं वे तो लोहारके धोंकनीकी तुल्य वृथा श्वास लेतेहैं अर्थात् परपुरुषोंके ठगनेकेलियेही जीवतेहैं वे कृतघ्न है क्योंकि जिस आपके अनुग्रहसे सामर्थ्यवाले हुए महत्तत्त्व अहंकारादिक आपकी सेवाकेलिये आपका क्रीडास्थानभूत समष्टि व्यष्टि देहरूप ब्रह्मांडको रचेहैं उस ब्रह्मांडमें स्थित होकर महत्तत्त्वोंसे निष्पन्न शरीरको ग्रहणकर आपकी उपासना नहीं करतेहैं इसस पुरुषकी तुल्य आकारवाले हुए अन्नमयादि कोषोंमें जो अंतिम आनंदमयकोष है तद्रूप हुए स्थूलसूक्ष्मजगत्से व्यतिरिक्त परमार्थभूत तत्त्वरूपसे सत्यवस्तु आपही हो इससे आपकीही उपासना युक्त है ॥ ४ ॥

'अनवगाह्यस्वरूप[1] आपकेविषैं प्रथम मनका प्रवेश अशक्य है इसलिये शाखाचंद्रन्यायसे उपासनाप्रकारोंका संप्रदाय श्रुतियां दर्शातीहैं'—

उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः
परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम् ॥
तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं
पुनरिह यत्समेत्य न पतन्ति कृतान्तमुखे॥५

ऋषिओंके संप्रदायमार्गोंमें स्थूलदृष्टिवाले पुरुष मणिपूरकमें स्थित ब्रह्मकी यज्ञादि कर्मावलंबनपूर्वक उपासना करतेहैं और आरुणि[2] पुरुष नाडियोंका प्रसरणस्थान जो हृदय तिसमें स्थित दहर (सूक्ष्म) रूपकी उपासना करतेहैं. हे अनंत! तिस हृदयसे आपका उपलब्धिस्थान जो सुषुम्णाख्य परमश्रेष्ठ ज्योतिर्मय प्रधानस्थान है तिसको अधिकारिजन प्राप्त होजाताहै जिस स्थानको अधिकारिजन प्राप्त होकर फिर संसारमें नहीं पडतेहैं ॥ ५ ॥

'यदि जीवकी तुल्य उदरादि संबंध आपकाभी है तब किस इतर व्यावृत्तस्वरूपसे आप उपास्य हो'—

स्वकृतविचित्रयोनिषु विशन्निव हेतुतया
तरतमतश्चकास्स्यनलवत्स्वकृतानुकृतिः ॥
अथ वितथास्वमूष्ववितथं तव धाम समं

[1] साक्षात्कारका अविषय. [2] अरुणोदयमें थोडा प्रकाश होजायहै इसीप्रकार उनकी उपासना है.

विरजधियोन्वयन्त्यभिविपण्यव एकरसम्॥६

जैसे स्वतः तारतम्यरहित अग्निकाष्ठके अनुसारसे दीर्घ, ह्रस्व, स्थूल और सूक्ष्म रूपसे प्रकाशताहै तैसेही उत्कृष्ट-अपकृष्टभावसे स्वकृत योनियोंका अनुकरण करतेहुए आपने रचित देवतिर्यङ्मनुष्यादि देहोंमें प्रविष्ट आपभी प्रकाशतेहो इसीसेही उत्पत्तिआदि नाना विकारवाले उक्त देहोंमें सब विकाररहित एकरस एकरूप आपके स्वरूपको ऐहिक आमुष्मिक कर्मफलरहित निर्मलमतिवाले अधिकारिजन जानतेहैं ॥ ६ ॥

'यो यदंशः स तं भजेत' ऐसे सिद्धान्तसे भगवद्भजनही युक्त है यह श्रुतियां दर्शातीहैं'—

स्वकृतपुरेष्वमीष्वबहिरन्तरसंवरणं
तव पुरुषं वदन्त्यखिलशक्तिधृतोंऽशकृतम्॥
इति नृगतिं विविच्य कवयो निगमावपनं
भवत उपासतेऽङ्घ्रिमभवं भुवि विश्वसिताः॥७॥

हे भगवन्! अपने २ कर्मोंसे उपार्जित देवादिक देहोंमें रहनेवाले जीवोंके संपूर्ण शक्तियोंके आश्रय पूर्णगुण आपके अंशकरके सृज्य श्रुतियां कहतीहैं इसप्रकार जीवका तत्त्वनिश्चय करके बाहरभीतरसे आवरण रहित पृथ्वीमें रहनेवाले विवेकिजन भगवच्चरणका उपासनही संसारदुःखनिवृत्तिका कारण है और कुछ कारण नहीं ऐसे विश्वासयुक्त हुए वेदोक्त सब कर्मोंका क्षेत्ररूप जन्ममरणादि संसारदुःखका निवर्तक जो आपका चरण तिसकी उपासना करतेहैं ॥ ७ ॥

'मोक्षको अपेक्षासे भगवद्भजनमेंही बडा आनंद है यह श्रुतियां दर्शातीहैं'—

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनो-
श्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः॥
न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते
चरणसरोजहंसकुलसङ्गविसृष्टगृहाः॥ ८ ॥

हे ईश्वर! दुर्ज्ञेय जो आपका तत्त्व (स्वरूप) तिसके बोध करावनेकेलिये अंगीकृत मूर्तिवाले आपका चरितही महासमुद्र है तिसमें यथेष्ट विहार करके श्रमको दूर करनेवाले, आपके चरणसरोजमें हंसकी तुल्य रममाण जो भक्तजन तिनोंके कुलोंमें कथाश्रवणकीर्तनादिके संबंधसे गृहादि सुखकोभी त्यागनेवाले भक्तिरसिक पुरुष मोक्षकीही इच्छा नहीं करते तो इंद्रादिक पदकी इच्छा नहीं करते इसमें क्या कहना. "मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः। सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने" इत्युक्तेः ॥ ८ ॥

'भगवद्भक्तोंके भजनानंदका निरूपण करके भगवद्भजनविमुख पुरुषोंकी निंदा दर्शातेहैं'—

त्वदनुपथं कुलायमिदमात्मसुहृत्प्रियव-
च्चरति तथोन्मुखे त्वयि हिते प्रिय आत्मनि च॥
न बत रमन्त्यहो असदुपासनयात्महनो
यदनुशया भ्रमन्त्युरुभये कुशरीरभृतः॥ ९ ॥

हे भगवन्! आपकी सेवाका उपयोगी यह नीडरूप शरीर

आत्मा, सुहृत्, प्रिय इनकी तुल्य है अर्थात् जैसे अपना आत्मा अपने स्वाधीन है तैसे देहभी अपने देहिके स्वाधीन रहेहैं और सुहृद (मित्र) जैसे उपकार करेहै तैसे देहभी देहिका उपकार करै और जैसे जो बात अपनेको प्रिय है वही बात देहकोभी प्रिय है इससे संसारसे उद्धारमें उन्मुख हितप्रिय आत्मस्वरूप आपमें जो रमण नहीं करतेहैं अर्थात् आपको कथाश्रवणादि करके जो पुरुष नहीं भजतेहैं वे दुष्टप्राणियोंमें तथा देहेंद्रियादिकोंके विषयोंमें आसक्ति कर आत्महत्यारे हैं अहह! जिस असदुपासनामें वासनावाले सूकरादि शरीरको धारण कर वारंवार संसारमें भ्रमतेहैं ॥ ९ ॥

'कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च । नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥ तस्मात्केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्' इस सिद्धांतसे श्रीकृष्णमेंही मनका निवेश करना अन्यत्र नहींकरना यह दर्शातेहैं'—

निभृतमरुन्मनोक्षदृढयोगयुजो हृदि यत्
मुनय उपासते तदरयोपि ययुः स्मरणात् ॥
स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियो
वयमपि ते समाःसमदृशोङ्घ्रिसरोजसुधाः॥१०॥

हे भगवन्! वायु, प्राण, मन, इंद्रिय इनको रोकनेवाले तथा दृढयोग करनेवाले मुनिजन हृदयमें जिस आपका ध्यान करतेहैं तिस आपके स्मरणसेही शत्रुजन (कंस-शिशुपालादिक) भी आपकोही प्राप्त भये. तथा शेषजीके देहकी सदृश भुजदंडमें

आसक्त है बुद्धि जिन्होंकी ऐसी परिच्छिन्न दृष्टिवाली गोपियां आपके ध्यानसे आपको प्राप्त भई. तथा आपके चरणसरोजको सुंदरप्रकारसे धारण करनेवाली, अपरिछिन्न आपके स्वरूपको देखनेवाली श्रुत्यभिमानिनी देवता हमभी आपकी कृपाकटाक्षसे आपकी तुल्य हैं अर्थात् आपकोही प्राप्त होवेंगी॥१०॥

'इसप्रकार भक्तिकी सुलभता प्रतिपादन कर ज्ञानकी दुर्लभता दर्शातेहैं'—

क इह नु वेद बताऽवरजन्मलयोग्रसरं
यत उदगादृषिर्यमनु देवगणा उभये ॥
तर्हि न सन्न चासदुभयं नच कालजवः
किमपि न तत्र शास्त्रमवकृष्य शयीत यदा ११

इस जगत्में अर्वाचीन उत्पत्ति विनाशवाला पुरुष पूर्वसिद्ध आपको कौन जानताहै? जिस आपसे ब्रह्मा उत्पन्न है, ब्रह्माके पीछे निवृत्तिनिष्ठ सनकादिक और प्रवृत्तिनिष्ठ मरीच्यादिक देवगण उत्पन्न हैं और जिसकालमें आप संपूर्ण जगत्का उपसंहार करके शयन करतेहो तब सत् (स्थूलआकाशादि) असत् (सूक्ष्ममहदादि) शरीर, कालका वेग, वेदपुराणादिक अर्थात् सब वस्तुजात स्थूलरूपसे कुछभी नहीं रहताहै. आपही रहतेहो इससे आपकी श्रवणकीर्तनादिरूप भक्तिही सूकर है ॥ ११ ॥

'वादी पुरुषोंके मतबाहुल्यसेभी ज्ञानकी दुर्घटता दर्शातीहैं'—

जनिमसतः सतो मृतिमुतात्मनि येच भिदां
विपणमृतं स्मरन्त्युपदिशन्ति त आरुपितैः ॥
त्रिगुणमयः पुमानिति भिदा यदबोधकृता
त्वयि न ततः परत्र स भवेदवबोधरसे ॥ १२ ॥

जो पुरुष असत्पदार्थकी उत्पत्ति, सत् पदार्थका नाश कहतेहैं वे सब भ्रमसेही उपदेश करतेहैं तत्त्वदृष्टिसे नहीं करते " सन्मूलाः सौम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः । नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः " इत्युक्तेः । और जो आत्मामें भेद कहतेहैं वेभी भ्रमसेही कहतेहैं. " एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः " इत्युक्तेः । क्योंकि त्रिगुणमय पुरुष है इस प्रकारसे आत्मभेद—व्यवहार अज्ञानकल्पित है जो प्राणियोंमें भ्रम है वह ज्ञानैकस्वरूप आपमें नहींहै क्योंकि सूर्यमें अंधकारकी संभावना नहीं होसकती ॥ १२ ॥

' यदि कहो कि मैं सुखी, मैं दुःखी, मैं ज्ञानी इसप्रकार आत्मभेद ब्रह्मादिपर्यंत प्रसिद्ध है फिर आत्मभेद नहींहै यह कहना कैसे संगत होगा सो यह कथन आत्मयाथात्म्यके स्वरूपके नहीं जाननेसे है यह दर्शातेहैं '—

सदिव मनस्त्रिवृत्त्वयि विभात्यसदा मनुजात्
सदभिमृशन्त्यशेषमिदमात्मतयात्मविदः ॥
नहि विकृतिं त्यजन्ति कनकस्य तदात्मतया
स्वकृतमनुप्रविष्टमिदमात्मतयावसितम् ॥ १३ ॥

हे भगवन् ! ब्रह्मासे लेके मनुष्य पर्यंत असत् (जड,

अनित्य, तुच्छ) मन, सद्रूपतुल्य आपमें भासताहै अर्थात् सर्वके आधार आपके सन्निधानसे दर्पणकी तुल्य स्वच्छतायुक्त चैतन्य ग्रहणके योग्यतासे भासताहै इससे मनके भेदसेही आत्मभेद है आत्मवेत्ता पुरुष समस्त विश्वको सद्रूपही जानतेहै क्योंकि आत्मा इसका उपादानकारण है आत्मा सत् है भेदप्रयुक्त जैसे पुरुष सुवर्णके विकृतिरूप कटककुंडलादिकोंको नहीं त्यागतेहैं किंतु कनकरूपसेही स्वीकार करतेहैं तैसे सबके उपादानभूत आपसे उत्पन्न संपूर्ण यह भोग्यभोक्त्रात्मक आपकाही स्वरूप निश्चित कियाहै आत्मयाथात्म्यज्ञानसे भेद नहींहै ॥ १३ ॥

' आपकी सेवा करकेही कृतार्थता दर्शातेहैं '—

तव परिचये चरन्त्यखिलसत्त्वनिकेततया
त उत पदाक्रमन्त्यविगणय्य शिरो निर्ऋतेः ॥
परिवयसे पशूनिव गिरा विबुधानपि तां-
स्त्वयिकृतसौहृदाः खलु पुनन्ति न ये विमुखाः ॥

हे भगवन् ! समस्तप्राणियोंके स्थानभूत आपकी जो पुरुष सेवा करतेहैं वे पुरुष जगत्का तिरस्कारपूर्वक मृत्युके मस्तकऊपर पद धरकर संसारको तरलेतेहैं और आपमें कियाहै प्रेम जिनोंने ऐसे पुरुष इतर पुरुषोंकोभी भक्तिमार्गके उपदेशद्वारा भक्तिके प्रतिबंधक पापको दूर कर मुक्तिकेयोग्य करदेतेहैं और वेदार्थको जाननेवालेभी हैं परंतु जो आपकी सेवासे विमुख है तिनको

पशुओंकीनाईं वेदरूपवाणीकरके अर्थात् तत्तत् कर्माधिकारसे बंधनयुक्त करदेतेहो ॥ १४ ॥

' इसीसे ब्रह्मादिक देवताभी आपकी सेवा करतेहैं और आपकी आज्ञा पालन करतेहैं यही श्रुतियां दर्शातींहैं '—

त्वमकरणः स्वराडखिलकारकशक्तिधर-
स्तव बलिमुद्वहन्ति समदन्त्यजयानिमिषाः॥
वर्षभुजोऽखिलक्षितिपतेरिव विश्वसृजो
विदधति यत्र ये त्वधिकृता भवतश्चकिताः ॥

हे भगवन् ! (आप)प्राकृतदेहेंद्रियरहित, स्वयंप्रकाश और सब प्राणियोंकी इंद्रियशक्तिके प्रवर्तक हो इसीसे जैसे खंडमंडलपति अपनी प्रजादत्त पूजाको स्वीकार कर महामंडलेश्वर राजाकी पूजा करतेहैं तैसेही विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिक और लोकपाल इंद्रादिकदेवता ये सब प्रजादत्त हव्यकव्यादिरूप (भेंटपूजा) को स्वयं स्वीकार कर आपकी पूजा करतेहैं और जिस कार्यमें जो जो देवता नियुक्त हैं वे सब भयभीत हुए अपने अपने कार्य करनेमें नियुक्त रहतेहैं, तात्पर्य यह है कि आपके भजनविना मायाकी निवृत्ति अशक्य है उसकी निवृत्तिकेलिये आपका भजन आवश्यक है ॥ १५ ॥

' यद्यपि स्वरूपसे जीवोंकी उत्पत्ति नहींहै तथापि शरीरके संबंधसे जीवोंकी उत्पत्ति कही जातीहै इससे जीव आपसेही उत्पन्न हैं तब जीवोंको आपका भजन युक्त है इस आशयसे जीवोंकी उत्पत्ति दर्शातेहैं '—

स्थिरचरजातयः स्युरजयोत्थनिमित्तयुजो
विहर उदीक्षया यदि परस्य विमुक्त ततः ॥
नहि परमस्य कश्चिदपरो न परश्च भवे-
द्वियत इवापदस्य तव शून्यतुलां दधतः॥१६॥

हे विमुक्त ! (मायावशवर्तित्वशून्य) यदि सृष्टिके समयमें मायाके प्रेरक आपकी मायाके संग जो विहारकी इच्छा है तब आपके संकल्पमात्रकरके प्रादुर्भूत विचित्र कर्मोंसे सूक्ष्मशरीरकरके युक्त स्थावरजंगमस्थूलशरीरविशिष्ट प्राणी उत्पन्न होतेहैं विषमसृष्टि करनेसे आपमें वैषम्य नहींहै क्योंकि परमकारुणिक आपके स्वकीय परकीय व्यवहार तो है नहीं विषमसृष्टिका हेतु तो प्राचीन कर्मसंबंधही जानना यदि कहो कि, व्यापकस्वरूप ब्रह्मके सृष्टिगत दोषसंबंध तो होजावेगा सो नहीं क्योंकि जैसे व्यापकस्वरूप आकाश निर्लेप है तैसे सृष्टिगत दोषका अनाश्रय अतिसूक्ष्म ब्रह्मकेभी सृष्टिगत दोषसंबंध नहींहै ॥ १६ ॥

' जीवोंका उत्पत्तिप्रकार तो दिखादिया अब जीवोंका अणुस्वरूपत्व-समर्थनपूर्वक पराभिमत जीवोंका व्यापकस्वरूप निरूपणमें दोषोंको दर्शातीहैं '—

अपरिमिताध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्वगता-
स्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा ॥
अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियन्तृ भवे-
त्सममनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया॥१७॥

हे ध्रुव ! (सदा स्थिर) जो जीव स्वरूपके विना अनंत और

नित्य हैं. और जो व्यापकस्वरूप हैं तो यह पक्ष हमारे संमत नहीं क्यौंकि यदि जीव वास्तविक स्वरूपके विना अनंत, नित्य और ज्ञानव्याप्तिके विना व्यापक हो तो आपकी समान हुए आपसे नियम्य नहीं होयँगे इनके नियंता आप न होसकते क्यौंकि स्वरूपसे आपभी व्यापक हो जीवभी व्यापक है जो जीवोंको अणुस्वरूप मानोगे तो जीवगत नियम्य और आपमें नियामकता ये दोनो पक्ष घटजावेंगे जो वस्तु उपाधिसे जिस पदार्थका विकाररूप है वह पदार्थ उस वस्तुका नियंता है क्यौं-कि उसमें वह अनुस्यूत रहा. कारणतासे उस वस्तुका त्याग नहीं करसकता आपके स्वरूपमें " यत् " " तत् " शब्दके सिवाय कुछभी कहाजावे नहीं अर्थात् जीवोंके अणुस्वरूप माननेसे नियम्य नियामकभाव संगत है अर्थात् स्वरूपसे तो जीव अणुस्वरूप है और ज्ञानकी व्याप्तिसे व्यापक है " यथा प्रका-शयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः। क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रका-यति भारत " इत्युक्तेः । और हम ब्रह्मको जानतेहैं इसप्रकार जो कहतेहैं वह आपके स्वरूपको नहीं जानते क्यौंकि आपके कृपाविना आप किसीके ज्ञानकेभी विषय नहीं और जो जाननेमें आताहै वह अनात्मपदार्थ है ।। १७ ॥

' जीवोंके शरीरसंबंधसे उत्पत्ति विधान कर जीवोंके कारण प्रकृतिपुरुषका उत्पत्तिका अभाव दर्शातेहैं '—

न घटत उद्भवः प्रकृतिपूरुषयोरजयो-
रुभययुजा भवन्त्यसुभृतो जलबुद्बुदवत् ।।

त्वयि त इमे ततो विविधनामगुणैः परमे
सरित इवार्णवे मधुनि लिल्युरशेषरसाः १८

प्रकृति और पुरुष (ईश्वर) की उत्पत्ति नहीं घटती क्यौं-कि ये दोनों श्रुतिमें अज (जन्मरहित) कहेहैं किंतु जैसे केवल वायुसे वा केवल जलसे जलका बुद्बुद नहीं होतेहैं किंतु दोनों मिलकरही उत्पन्न करसकतेहैं तैसेही प्रकृतिपुरुषके संबंधसे दे-हप्राणादिरूप उपाधिसहित जीवही उत्पन्न होतेहैं और जैसे व-नस्पतियोंके रस मधु (शहद) में और समस्त नदियां जैसे समु-द्रमें नामरूपरहित लीन होतेहैं तैसे ये समस्त जीव नानाप्रकारके इंद्रिय अंतःकरणादिरूप उपाधिसहित परमकारण आपमेंही लीन होतेहैं. "यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नाम-रूपे विहाय । तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् " इत्युक्तेः । तात्पर्य यह है कि, जैसे प्राचीन कर्म-संबंधसे जीवोंकी उत्पत्ति होतीहै तैसे आपकी उत्पत्ति नहींहै किंतु अपने भक्तोंकी रक्षाकेलिये अपनी इच्छासे तो आप-काभी अवताररूप उत्पत्ति श्रुतिस्मृत्यादिकमें प्रसिद्ध है. " अ-जायमानो बहुधाभिजायते" "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् "इति ।। १८॥

' ज्ञानादिरूप जो साधन सो तो दुर्लभ है और भगवद्भजन सुलभ है तिससेही संसाररूप दुःखकी निवृत्ति होतीहै इतरसे नहीं इसमें सदाचार प्रमाण दर्शातेहैं '—

नृषु तव मायया भ्रममभीष्ववगत्य भृशं

त्वयि सुधियो भवे दधति भावमनुप्रभवम् ॥
कथमनुवर्ततां भवभयं तव यद्भ्रुकुटिः
सृजति मुहुस्त्रिणेमिरभवच्छरणेषु भयम् ॥१९॥

इन जीवोंमें आपको माया करके दुस्तर देहात्माभिमान-रूप भ्रमको जानकर विवेकिजन क्षणक्षणमें श्रवणकीर्तनादि करके अपने मनको वृत्तिको जन्ममरणादिस्वरूप संसारका नि-वर्तक आपके स्वरूपमें लगातेहैं अर्थात् आपमेंही तदाकारवृत्ति करतेहैं क्योंकि जिन पुरुषोंके आप रक्षक नहींहो तिनमें आ-पका भ्रूभंगरूप काल जन्ममरणादिरूप संसारको रचदेताहै इससे आपको भजनेवाले पुरुषोंको किसी प्रकारसेभी संसारभय नहीं होताहै अर्थात् आपकी कथाश्रवण-कीर्तनादिरूप भक्तिही सं-सारका मूलोच्छेदन करनेवाली है ॥ १९ ॥

'भगवान्‌की भक्ति मनको रोकेविना नहीं होसकती मनका निरोध गुरुचरणकी सेवासे होताहै उसकेविना मनका निरोध दुष्कर है इस विषयको श्रुतियां दर्शातीहैं '—

विजितहृषीकवायुभिरदान्तमनस्तुरगं
य इह यतन्ति यन्तु मतिलोलमुपायखिदः ॥
व्यसनशतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणं
वणिज इवाजसन्त्यकृतकर्णधरा जलधौ ॥२०॥

हे भगवन् ! जीतलिये हैं इंद्रिय-प्राणवायु जिन्होंने ऐसे यो-गियोंकोभी वश करनेमें अशक्य अतिचंचल अश्वरूप मनको गुरुचरणकी सेवा त्यागकर वश करनेमें जो यत्न करतेहैं वे जैसे

वणिक्‌जन कर्णधार (नावडियां) के विना समुद्रमें डूबतेहैं तैसे गुरुचरणकी सेवाविना उपायोंमें क्लेशयुक्त बहु दुःखसे आकुल हुए संसारसमुद्रमें निमग्न होतेहैं अर्थात् डूबतेहैं इससे, "प्राकृतैः संस्कृतैश्चैव गद्यपद्याक्षरैस्तथा। देशभाषादिभिः शिष्यं बोधयेत्स गुरुः स्मृतः" इत्युक्त लक्षणवाले गुरुसे निरंतर भगवद्भजन-सु-खानुभवसे स्वतःही मन निश्चल होजाताहै इतर किसीप्रकारसे नहीं होताहै ॥ २० ॥

'यदि सर्वथा सर्वकालमें भगवान्‌मेंही मनकी वृत्ति करेंगे तब स्वजनादिसुख नहीं होयगा यह आशंका कर भगवान्‌की भक्तिसे स्वजनादिकके सुखका अवसरही नहीं आवेगा यह विषय दर्शातेहैं '—

स्वजनसुतात्मदारधनधामधरासुरथै-
स्त्वयि सति किं नृणां श्रयत आत्मनि सर्वरसे ॥
इति सदजानतां मिथुनतो रतये चरतां
सुखयति को न्विह स्वविहते स्वनिरस्तभगे ॥२१॥

हे भगवन् ! परमानंद सद्रूप आत्मस्वरूप आपकी सेवा करनेवाले पुरुषोंके स्वजन, पुत्र, देह, स्त्री, धन, गृह, भूमि, प्राण, इंद्रिय, रथ औरभी सुखकी सामग्री इनकरके क्या उपयोग है क्योंकि ये तो तुच्छ पदार्थ हैं इनसे अविनाशी सुख नहीं होता परमार्थस्वरूप सत्यसुखरूप आपको नहीं जानकर स्त्री-पुरुष मिल-कर रतिसुखकेलिये घरमें जो विचरतेहैं तिनको स्वतः नश्वर इस संसारमें स्वतः ज्ञानैश्वर्यादिरहित हुआ कौन है कि जो सुखयुक्त

करे अर्थात् सुखरूप आपके विना कोईभी नहींहै. " दिष्टया पुत्रान् पतीन् देहान् स्वजनान् भवनानि च ॥ हित्वा वृणीत यूयं यत्कृष्णाख्यं पुरुषं परम् " इत्युक्तेः ॥ २१ ॥

' फिरभी सदाचार दर्शातीहैं '—

भुवि पुरुपुण्यतीर्थसदनान्यृषयो विमदा-
स्त उत भवत्पदाम्बुजहृदोऽघभिदाङ्घ्रिजलाः ॥
दधति सकृन्मनस्त्वयि य आत्मनि नित्यसुखे
न पुनरुपासते पुरुषसारहरावसथान् ॥ २२ ॥

नित्यसुखवाले नित्यसुखरूप आपमें अहं--ममाभिमानरहित हृदयमें आपके चरणारविंदका ध्यान करनेवाले ऋषिगण एकवारभी मनकी वृत्ति करतेहैं वे पुरुषोंके विवेक, धैर्य, क्षमा और शांतिके हरनेवाले गृहोंमें निवास नहींकरते किंतु पृथ्वीमें बहुत पुण्य देनहार तीर्थ, भगवन्मंदिर, और भगवद्भक्तोंके गृह इनमें निवास करतेहैं अर्थात् वहांही स्थित हुए भगवद्भजन करतेहैं वास्तविक तो तीर्थादिसेवा करकेभी उनको क्या है क्योंकि हृदयस्थ भगवच्चरण-जलरूप तीर्थके संबंधसे निर्मल हुए भगवान्की प्रेरणासे तीर्थादिकोंकोभी निर्मल करनेकेलिये वहां निवास करतेहैं. "साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः। हरन्त्यघं तेऽङ्गसङ्गात्तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः" इत्युक्तेः ॥ २२ ॥

' स्वजनादिकोंके त्यागपूर्वक भगवद्भजनका होना वैराग्यके विना दुष्कर है इससे वैराग्योत्पत्तिकेलिये स्वजनादिकोंके संबंधसुखमें अनित्यत्व दर्शातेहैं '—

सत इदमुत्थितं सदिति चेन्ननु तर्कहतं
व्यभिचरति क्व च क्व च मृषा न तथोभययुक् ॥
व्यवहृतये विकल्प इषितोन्धपरम्परया
भ्रमयति भारती त उरुवृत्तिभिरुक्थजडान् २३

आत्मामें प्रतीयमान स्वजनादिविषयक अहंममाभिमानरूप तत्पूर्वक सुखदुःखादिक सत् हैं क्योंकि सद्रूप आत्मासे उत्पन्न हैं जो जिससे उत्पन्न होताहै सो तदात्मक होताहै जैसे सुवर्णसे उत्पन्न कटक-कुंडलादिक सुवर्णात्मक हैं तैसे सद्रूपब्रह्मसे उत्पन्न स्वजनादि सुखभी सद्रूप हैं यह अनुमान विचारात्मकतर्कसे बाधित है और ' सदुत्पन्नत्वरूप हेतु ' साध्यका व्यभिचारी है जैसे पितासे पुत्र उत्पन्न है वह प्रथम क्यों मरजाताहै और पृथ्वीसे उत्पन्न घटादिक क्यों फूटजातेहैं तथा गुण (रज्जु) उपादानक सर्प गुणस्वरूप नहीं होता उसकी सत्तासे उसकी सत्ता इससे सत्से उत्पन्नभी वस्तु अनित्य होतीहै प्रकृतमें सिद्ध यह भया कि " इदं मम मनुष्योहम् अहं सुखी अहं दुःखी " यह व्यवहार सत् नहीं है यदि समस्तव्यवहार अहंममाभिमानपूर्वक होताहै तब सर्वथा उक्त व्यवहारको अनित्यत्वरूप मिथ्या जब स्वीकार करतेहो तब लोकमें प्रवृत्तिरूप व्यवहार, किसप्रकार सिद्ध होयगा! यह नहीं कहसकते क्योंकि संसार है अनादि विचारविनाही अंधके साथ अंध पुरुष जैसे भ्रमतेहैं तैसे व्यवहारकेलिये देहेंद्रियादिकमें अहंममाभिमानरूप व्यवहार इष्ट (अनुकूल) ही है यदि अंधपरंपरान्यायसे

देहाद्यभिमानको मिथ्या मान कथंचित् लौकिकव्यवहार तो हो परंतु तत्पुरुषकारसे वेदव्यवहारभी नहीं होयगा यह नहीं कहसकते क्योंकि वेद, आप्तोच्चरित हैं इससे वैदिकव्यवहार मिथ्या नहीं इसकारण आपकी वेदरूपी वाणी कर्मश्रद्धाभाराक्रांत मंदमतिपुरुषोंकोही मोह करवातीहै इससे वे यथार्थवेदके तात्पर्यको न जानकर कर्मफलको नित्य मानतेहैं परंतु कर्म करनेसे अंतःकरणकी शुद्धि होतीहै इस बातको नहीं जानते तात्पर्य यह है कि, भगवद्व्यतिरिक्त पदार्थोंमें आसक्ति छोडकर भगवान्‌के भजनमेंही वेदका तात्पर्य्य है ॥ २३ ॥

' स्वजनादिकोंमें अहंममाभिमान तिसमें सत्यत्वनिराकरण करके अनित्यत्वरूप मिथ्यात्वको दर्शातेहैं '—

न यदिदमग्र आस न भविष्यतो निधना-
दनुमितमन्तरा त्वयि विभाति मृषैकरसे ॥
अत उपमीयते द्रविणजातिविकल्पपथै-
र्वितथमनोविलासमृतमित्यवयन्त्यबुधाः ॥२४॥

हे भगवन् ! अहंममाभिमानरूप व्यवहार सृष्टिसे पूर्व नहीं तो हुआ, और सृष्टिके लयके अनंतर नहीं होयगा इससे मध्यमें आपका शरीरभूत जीवात्मामेंही उक्त व्यवहार अनित्यतासे भासताहै इसीसे शुक्ति आदिमें रजतादिकोंका जो भ्रम तिनके विषयके सदृश उक्त व्यवहार निरूपण करनेमें आताहै अर्थात् इसके सत्यतामें प्रमाणका अभाव होनेसे मनसेही कल्पित आ-

त्मामें सुखदुःखादिक अनित्य हैं इनको जो कोई सत्य मानतेहैं वे अज्ञ पुरुष हैं ॥ २४ ॥

' देहाद्यभिमान और देहाभिमानराहित्य प्रयुक्त जीवईश्वरकी विशेषता दर्शातीहैं '—

स यदजया त्वजामनुशयीत गुणांश्च जुषन्
भजति सरूपतां तदनु मृत्युमपेतभगः ॥
त्वमुत जहासि तामहिरिव त्वचमात्तभगो
महसि महीयसेऽष्टगुणितेऽपरिमेयभगः ॥ २५ ॥

हे भगवन् ! वह जीव आपकी मायाकरके मोहित हुआ प्रकृतिपरिणामात्मक देवमनुष्यादि मूर्तिको धारण करताहै फिर देवमनुष्याद्यात्माभिमानभी करताहै फिर शब्दआदि विषयोंको सेवन करताहुआ दूर होगयाहै ज्ञान ऐश्वर्य आनंदादि गुण जिसका ऐसा हुआ संसारमें प्राप्त होताहै और जैसे सर्प अपनी त्वचाको त्याग देताहै तैसे आपभी इस मायाको त्याग देतेहो अर्थात् स्वगत कंचुकमें बुद्धिकरके जैसे सर्प अभिमान नहीं करता तैसे आपभी मायाकी उपेक्षा करदेतेहो क्योंकि अणिमाद्यष्टविभूतिवाले परमानंदस्वरूपमें नित्यप्राप्त ऐश्वर्यादिगुणयुक्त हुए तथा देशकालाद्यपरिच्छिन्न अपरिमित ऐश्वर्यवाले हुए आप विराजमान हो तस्मात् सर्वसद्गुणयुक्त सर्वदोषरहित भगवान्‌ही सेव्य है और अनात्मपदार्थ सेव्य नहींहै ॥ २५ ॥

' एवंभूत भगवान् क्यों नहीं जानेजातेहैं तथाविध भगवान्‌के जाननेमें प्रतिबंधक सामग्री दर्शातीहैं '—

यदि न समुद्धरन्ति यतयो हृदि कामजटा-
दुरधिगमोऽसतां हृदि गतोऽस्मृतकण्ठमणिः ॥
असुतृपयोगिनामुभयतोऽप्यसुखं भगव-
न्ननपगतान्तकादनधिरूढपदाद्भवतः ॥२६॥

हे भगवन्! संन्यासिजनभी जब अपने हृदयमें स्थित कामोंको वासनाको नहीं त्यागतेहैं तब कामोंकी वासनाओंकरके दुष्टांतःकरण प्राणिओंके हृदयमेंही स्थित भगवान् जैसे कंठमें स्थित मणि विस्मृत होजाताहै तैसे विस्मृत होजातेहैं इतनाही नहीं किंतु योगके कपटकरके इंद्रियोंको तृप्त करनेवाले, नहीं निवृत्त हुआहै अंतकरूप काल जिनका, नहीं प्राप्त है आपका पद जिनको ऐसे सकाम पुरुषोंको तो इस लोक तथा परलोकमेंभी आपसे दुःखही प्राप्त होताहै. तात्पर्य यह है कि लोकोंको प्रसन्न करना, धनसंचय करना, गुप्तकार्य करना इत्यादिक विषयोंमें इस लोकमें दुःख होताहै और आपकी प्राप्तिके निमित्त संन्यास लेनेपरभी आपकी प्राप्ति नहीं भई और स्वधर्मका अतिक्रमण किया तो आपके दंडरूप नरककी प्राप्ति भई इससे परलोकमेंभी सुख नहीं वे दोनों लोकोंसे भ्रष्ट होजातेहैं इससे निश्चल आपकी भक्तिही उभय लोकमें श्रेय करनेवाली है ॥ २६ ॥

'सकाम पुरुषोंको दुःखरूप फलका निरूपण करके निष्कामिज्ञानिजनोंको जो फल होताहै उसको दर्शातीहैं '—

त्वदवगमी न वेत्ति भवदुत्थशुभाशुभयो-
र्गुणविगुणान्वयांस्तर्हि देहभृतां च गिरः ॥

अनुयुगमन्वहं सगुणगीतपरम्परया
श्रवणभृतो यतस्त्वमपवर्गगतिर्मनुजैः ॥ २७ ॥

हे भगवन्! ज्ञानदशामें कर्मफल देनेवाले आपसे प्रादुर्भूत जो प्राचीन पुण्यपापात्मक कर्म तिनके फलभूत जो सुखदुःखसंबंध तिनको आपको जाननेवाला अधिकारी पुरुष अनुसंधान (स्मरण) नहीं करता और देहाभिमानियोंके निंदास्तुतिवाक्यकोभी नहीं जानता यह उस ज्ञानीको युक्तही है क्योंकि युगयुगप्रति; दिनदिनमें अप्राकृत—गुणयुक्त आपके उपदेशसंतति (सत्संप्रदायानुसार) से पुरुषोंके स्मृतिगोचर हुए आपही उनके मोक्षरूप गति हो. तात्पर्य यह है कि जो सुखदुःखाद्यनुसंधानरहित तत्त्वज्ञ है उनका कर्ममें अधिकार नहीं और जो निरंतर आपकी कथा श्रवण करके आपके आसन्नपदवाले हैं वे विधिनिषेधके किंकर नहींहै और जो मर्यादामें स्थित हैं वे कर्माधिकारी हैं और जो वेदोक्त मर्यादाका त्याग कर योगादिकोंके छलसे इंद्रियोंके लालन करनेमें लालसावाले हैं उनको उभयलोकमें दुःख है ॥ २७ ॥

'आपका अपरिमित जो महिमा तिसको अशेष-विशेषरूपसे कोईभी निरूपण नहीं करसकताहै इस विषयको दर्शातीहैं '—

द्युपतय एव ते न ययुरन्तमनन्ततया
त्वमपि यदन्तराण्डनिचया ननु सावरणाः ॥
ख इव रजांसि वान्ति वयसा सह यच्छ्रुतय-

स्त्वयि हि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः २८

हे भगवन् ! स्वर्गादि लोकके पति ब्रह्मादिकदेवताभी आपकी महिमाको अंत (पार) को नहीं प्राप्त हैं इसमें कुछ आश्चर्य नहीं पर आपभी अपनी महिमाके अंतको नहीं पाते अर्थात् नहीं जानते क्यौंकि आपकी महिमा अनंत है. यदि आपभी अपनी महिमाका पार नहीं जानते तो आपमेंभी अज्ञता सिद्ध भई यह नहीं कहसकते क्यौंकि जैसे खपुष्प और शशशृंग लोकमें है नहीं जो वस्तु नहीं होताहै उसका न जानना जाननेवाले सर्वज्ञका सर्वज्ञपनका क्षतिकर नहींहै. तैसेही आपकी महिमाका अंत है नहीं तो उसका न जानना आपकी सर्वज्ञताका विघातक नहीं है जैसे आकाशमें रजके कण हैं तैसे जिस आपके स्वरूपमें उत्तरोत्तर दस दस गुण पृथिव्यादि सात आवरणोंसे युक्त ब्रह्मांडोंके समूह कालचक्रसे भ्रमण करतेहैं इसकारण श्रुतियां प्राकृत-गुण-निरसनपूर्वक असंख्येय कल्याणगुण युक्त आपके स्वरूपकाही तात्पर्यवृत्तिकरके प्रतिपादन करतीहैं क्यौंकि निरवधिक निषेध तो होनहीं सकता अवधिभूत आपमेंही समस्त श्रुतियां पर्यवसित हैं ॥ २८ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

इत्येतद्ब्रह्मणः पुत्रा आश्रुत्यात्मानुशासनम् ॥
सनन्दनमथानर्चुः सिद्धा ज्ञात्वात्मनो गतिम् ॥२९॥

श्रीभगवान् नारदजीसे कहनेलगे—हे नारद ! ब्रह्मपुत्र सनकादिक इसप्रकार आत्मानुशासन स्तुत्यात्मक श्रुतिसे

आत्माका तत्त्व जानकर कृतार्थ हुए अपने गुरु सनंदनजीका पूजन करतेभये ॥ २९ ॥

इत्यशेषसमाम्नायपुराणोपनिषद्रसः ॥
समुद्धृतः पूर्वजातैर्व्योमयानैर्महात्मभिः ॥ ३० ॥

एवंभूत उक्त प्रकारवाला समस्त पूर्वकाण्ड, पुराण, उपनिषद् इन्होंका रसतुल्य सारभूत अर्थ निरपेक्ष आकाशचारी महात्मा पूर्वजात (वृद्ध) सनकादिकोंने निर्णीत कियाहै ॥ ३० ॥

त्वं चैतद्ब्रह्मदायाद श्रद्धयात्मानुशासनम् ॥
धारयंश्चर गां कामं कामानां भर्जनं नृणाम् ॥ ३१॥

हे ब्रह्मदायाद ! (नारद) मोक्षके प्रतिबंधक जो जीवोंके काम तिसका निवर्तक यह आत्मानुशासन है तिसको विश्वासपूर्वक तू चित्तमें धारण करताहुआ यथेष्ट पृथ्वीमें पर्यटन कर ॥ ३१ ॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एवं स ऋषिणादिष्टं गृहीत्वा श्रद्धयात्मवान् ॥
पूर्णः श्रुतधरो राजन्नाह वीरव्रतो मुनिः ॥ ३२ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले हे राजन् ! नैष्ठिक जितेंद्रिय वह मुनि नारद भगवान्से उपदिष्ट आत्मतत्त्वको श्रद्धापूर्वक ग्रहण करके आत्मसाक्षात्कारप्रयुक्त आनंदसे परिपूर्ण हुआ भगवान्को वचन बोले ॥ ३२ ॥

॥ नारद उवाच ॥

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायामलकीर्तये ॥

यो धत्ते सर्वभूतानामभवायोशतीःकलाः ॥ ३३ ॥

नारदजी बोले—जो भगवान् आप संपूर्ण भूतोंके संसार-दुःख दूर करनेकेलिये सुंदर नाना प्रकारकी मूर्ति धारण करतेहो तिस सर्वदोष निवर्तककीर्तिवाले श्रीकृष्णभगवान्‌को मैं प्रणाम करताहूं ॥ ३३ ॥

इत्याद्यमृषिमानम्य तच्छिष्यांश्च महात्मनः ॥
ततोगादाश्रमं साक्षात्पितुर्द्वैपायनस्य मे ॥ ३४ ॥

आनंदितचित्तवाले नारद इसप्रकार आद्यऋषि (श्रीनारायणजी) को तथा भगवान्‌के शिष्यगणोंको प्रणाम कर उस स्थानसे मेरे पिता व्यासजीके आश्रममें प्राप्त होतेभये ॥ ३४ ॥

सभाजितो भगवता कृतासनपरिग्रहः ॥
तस्मै तद्वर्णयामास नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥ ३५ ॥

उस आश्रममें व्यासजीके दिये आसनको ग्रहण कर व्यासजीसे पूजित हुए भगवानके मुखसे श्रुत जो श्रुतिगीत तिसको मेरे पिता व्यासजीके ताईं निरूपण करतेभये वही मेरे पिता मेरेको उपदेश करतेभये ॥ ३५ ॥

इत्येतद्वर्णितं राजन् यन्नः प्रश्नः कृतस्त्वया ॥
यथा ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणेपि श्रुतिश्चरेत्॥३६॥

सो हे राजन्! जो तैंने प्रश्न किया कि, देवमनुष्यादि शब्दसे अनिर्देश्य (निर्देशानर्ह) प्राकृतगुणरहित ब्रह्मको कैसे श्रुतियां प्रतिपादन करतीहैं सो इसका उत्तर उक्त प्रकारसे हमने वर्णन किया ॥ ३६ ॥

योस्योत्प्रेक्षक आदिमध्यनिधने योव्यक्तजीवेश्वरो
यः सृष्ट्वेदमनुप्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः॥
यं संपद्य जहात्यजामनुशयी सुप्तः कुलायं यथा
तं कैवल्यनिरस्तयोनिमभयं ध्यायेदजस्रं हरिम् ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवतान्तर्गत—श्रुतिगीतं समाप्तम् ॥५॥

जो इस विश्वका उत्प्रेक्षक अर्थात् जीवोंके समस्तपुरुषार्थ सिद्धिकेलिये सृष्टि, स्थिति, लय इनकी आलोचना करनेवाले, तथा आलोचना कर जन्म, पालन, संहार इस कर्ममें रहनेवाले, तथा जो प्रकृति-पुरुषका ईश्वर, और जो इस ब्रह्मांडको रचकर अंतर्यामिरूपसे उसमें प्रविष्ट होय जीवोंके भोगायतनशरीरोंको करतेभये और जो भोग देकर उन शरीरोंका परिपालन करतेहैं जैसे सुप्तदेहधारीको और पुरुष देखतेहैं वह अपने आत्माको नहीं देखताहै सुखपूर्वक सोताहै तैसे जिसको प्राप्त होकर साष्टांग प्रणाम करके जीवात्मा जिसके चरणमूलमें सोताहुआ प्रकृति संबंधको त्याग देताहै तिस अप्रच्युत ज्ञानानंदैकस्वरूपकी प्राप्तिसे दूर करदिये है जीवोंके प्राचीनकर्मवासना जिन्होंने ऐसे भयनिवर्तक भक्तजनदुःखहरणशील भगवान्‌का पुरुष ध्यानकरे ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहावनशास्त्रिकृत-श्रीमद्भागवतान्तर्गत-श्रुतिगीतभाषानुवादः समाप्तः ॥ ५ ॥

॥ श्रीमहिषीस्तुताय नमः ॥

अथ

महिषीगीतप्रारम्भः ।

'किसीसमय संपूर्ण समृद्धिकरके युक्त द्वारकामें सुखपूर्वक सोलह सहस्र पत्नियोंके प्यारे एकही अपनी प्यारियोंसे नानातरह क्रीडा करतेहुए श्रीकृष्णजीका चलना, बोलना, मुसकाना, हास्यकी वार्ता, क्रीडा, आलिंगनकरके जिन स्त्रियोंकी बुद्धि हरीगई वेही स्त्रियां प्रथम चुप होकर फिर श्रीकृष्णचंद्रजीका ध्यान कर उन्मत्त होकर जडकी तुल्य जो वचन कहतीभई तिन वचनोंको मेरेसे श्रवणकरो'—

॥ महिष्य ऊचुः ॥

कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे
स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः ॥
वयमिव सखि कच्चिद्गाढनिर्भिन्नचेता
नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन ॥ १ ॥

महिषियां बोलीं—हे कुररि! (टटीहरी) इसरात्रिमें गुप्तबोध श्रीकृष्णजी सोतेहैं और तू तो सोती नहींहै उनकी निद्राका भंग करतीहुई क्यौं पुकारतीहै यह तुझे उचित नहीं. हे सखि! हमारी नाईं कमलनयन श्रीकृष्णजीकी हास्यलीलापूर्वक ईक्षित (देखना) से तेराभी चित्त क्या हरगयाहै इसीसे तू पुकाररहीहै ॥ १ ॥

नेत्रे निमीलयसि नक्तमदृष्टबन्धु-
स्त्वं रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकि ॥
दास्यं गता वयमिवाच्युतपादजुष्टां
किं वा स्रजं स्पृहयसे कबरेण वोढुम् ॥ २ ॥

हे चक्रवाकि! (चकवी) तू रात्रिमें नेत्रोंको नहीं मूंदती और करुणापूर्वक रोतीहै तो क्या तेरा पति तेरे पास नहींहै? अथवा हमारी नाईं दासीभावको प्राप्त होकर अच्युतभगवानूकी चरणसेवित मालाको अपनी चोटीपर धारण करनेको चाहतीहै? और ऐसाही हो तो बडी खेदकी बात है ॥ २ ॥

भो भोः सदा निष्टनसे उदन्व-
न्नलब्धनिद्रोऽधिगतप्रजागरः ॥
किं वा मुकुन्दापहृतात्मलाञ्छनः
प्राप्तां दशां त्वं च गतो दुरत्ययाम् ॥ ३ ॥

हे समुद्र! निद्राके नहीं आनेसे जागरण करताहुआ तू चिल्लाय रहाहै अथवा तेरीभी हमारीसी मोहरूप दशा होरहीहै जैसे भोगकरके मुकुंदने हमारे कुचनकी केशर लेलीहै ऐसे तेरेकोभी मथकर लक्ष्मी और कौस्तुभमणि निकाल लेलीहै ॥ ३ ॥

त्वं यक्ष्मणा बलवताऽसि गृहीत इन्दो
क्षीणस्तमो न निजदीधितिभिः क्षिणोषि ॥
कच्चिन्मुकुन्दगदितानि यथा वयं त्वं
विस्मृत्य भोः स्थगितगीरुपलक्ष्यसे नः ॥ ४ ॥

हे चंद्र! तू बडे क्षयरोगसे युक्त है इसीलिये क्षीण हुआ-

है अपनी किरणोंकरके अंधकारको नहीं दूर करता अथवा हमारीनाईं मुकुंदभगवान्‌की रहस्यवार्ताओंको भूलके तिसी श्रीकृष्णचंद्रकी चिंताकेमारे तू क्षीण होगयाहै. हम जाने है तेरी वाणी हमारीनाईं बंद होगईहै ॥ ४ ॥

किं वा चरितमस्माभिर्मलयानिल तेऽप्रियम् ॥
गोविन्दापाङ्गनिर्भिन्ने हृदीरयसि नः स्मरम् ॥ ५ ॥

हे मलयाचलके पवन ! हमने तेरा क्या अप्रिय कियाहै ? जिससे गोविंदके कटाक्षसे भिन्नहुए हमारे हृदयमें कामदेवको उत्पन्न करताहै बिना अपराध हमको दुःख देना तुझको अनुचित है ॥ ५ ॥

मेघ श्रीमंस्त्वमसि दयितो यादवेन्द्रस्य नूनं
श्रीवत्साङ्कं वयमिव भवान्ध्यायति प्रेमबद्धः ॥
अत्युत्कण्ठः शबलहृदयोऽस्मद्विधो बाष्पधाराः
स्मृत्वा स्मृत्वा विसृजसि मुहुर्दुःखदस्तत्प्रसङ्गः ६

हे मेघ ! (आतप दूर करनहार) श्रीकृष्णजीकी नाईं तू श्यामवर्णवाला है उसीसे श्रीकृष्णजीका निश्चय करके तू प्रिय है इसीसे हमारी नाईं प्रेम करके बद्ध हुआ श्रीवत्सचिन्हवाले श्रीकृष्णजीका स्मरण करताहै और हमारी नाईं उत्कंठित होकर प्रेमसे आर्द्रचित्त होकर उसका स्मरण कर वारंवार जलधाराको छोडताहै अथवा ठीक है उसका संग विरक्तोंको सुख देनेवाला और संसारीजनोंको दुःख देनेवाला है ॥ ६ ॥

प्रियरावपदानि भाषसे
मृतसंजीविकयाऽनया गिरा ॥
करवाणि किमद्य ते प्रियं
वद मे वल्गितकण्ठ कोकिल ॥ ७ ॥

हे रमणीयकंठवाले कोयल ! मृतहुए पुरुषोंकोभी जिवावनेवाली इस तेरे वाणीसे उस प्रिय बोलनेवाले श्रीकृष्णजीके वचन कहताहै तू कहो भला तेरा प्रिय मैं क्या करूं ? ॥ ७ ॥

न चलसि न वदस्युदारबुद्धे
क्षितिधर चिन्तयसे महान्तमर्थम् ॥
अपि बत वसुदेवनन्दनाङ्घ्रिं
वयमिव कामयसे स्तनैर्विधर्तुम् ॥ ८ ॥

हे उदारबुद्धे ! हे पर्वत !! नहीं तू चलता, नहीं कुछ कहता, इसीसे तू बडी चिंताकर है क्या ? जैसे हम वासुदेवके चरणको स्तनोंके ऊपर धारण करनेको चाहतीहैं तैसे तूभी स्तनतुल्य अपने शृंगोंके ऊपर वसुदेवनंदनके चरणको धारण करने चाहताहै और जो धारण करेगा तो हमारीसी तेरीभी दशा होजायगी॥८॥

शुष्यद्ध्रदाः कृशतरा बत सिन्धुपत्न्यः
संप्रत्यपास्तकमलश्रिय इष्टभर्तुः ॥
यद्वद्वयं यदुपतेः प्रणयावलोक-
मप्राप्य मुष्टहृदयाः पुरुकर्शिताः स्मः ॥ ९ ॥

हे समुद्रकी पत्नियो ! (नदियो) श्रीकृष्णजीके प्रणयपूर्वक दृष्टिको प्राप्त नहीं होनेसे जैसे हमारे हृदय हरगये हैं और शरीर कृ-

श होगयेहै तैसेही ग्रीष्मऋतुमें तुह्मारे प्रियभर्ता समुद्रके प्रणयाव-लोक (मेघके द्वारा प्रवाहकी पूर्ति) के विना तुमभी शुष्कह्रद होगई और तुह्मारेमेंसे कमलोंकी शोभाभी गई. अहो ! बडी खेदकी बातेंहैं ॥ ९ ॥

'उसीसमय आयेहुए हंसको दूत मान कहनेलगीं'—

हंस स्वागतमास्यतां पिब पयो ब्रूह्यङ्ग शौरेः कथां
दूतं त्वां नु विदाम कच्चिदजितः स्वस्त्यास्त उक्तं पुरा ॥
किंवा नश्चलसौहृदः स्मरति तं कस्माद्भजामो वयं
क्षौद्रालापय कामदं श्रियमृते सैवैकनिष्ठा स्त्रियाम्॥१०॥

हे हंस ! तू आया बहोत मंगल हुआ इस आसनपर बैठ क्षीर पी. हे हंस ! श्रीकृष्णकी वार्ता कहो तू उसका दूत है सो हम जानतीहैं क्या वह मंगलपूर्वक स्थित है अस्थिरप्रेमवाला वह श्रीकृष्ण एकांतमें जो बात हमसे कहताथा उनका किसीसमय स्मरण करताहै? यदि तू ऐसा कहे कि, पूर्वोक्तबातोंका स्मरण कर तुह्मारे लेनेकेलियेही मैं भेजाहूं तब हमारा यह कहनाहै कि हे क्षुद्रके दूत ! हम उसको कैसे भजें उसी कामद श्रीकृष्णजीको, हमको ठगकर अकेली रमनेवाली लक्ष्मीको छोडकर यहां आनेकेलिये कहो. उस निष्ठावालीको कैसे छोडे ऐसा कहेगा तो क्या हम स्त्रियें निष्ठावालीं नहीं हैं ॥ १० ॥

इतीदृशेन भावेन कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ॥
क्रियमाणेन माधव्यो लेभिरे परमां गतिम् ॥ ११ ॥

इति श्रीमद्भागवतान्तर्गत—महिषीगीतं समाप्तम् ॥६॥

श्रीशुकदेवजी कहतेहैं—कि हे राजन् ! माधवकी स्त्रियें इस प्रकार योगेश्वर श्रीकृष्णजीमें अनुपम प्रेमकर परमगति (मुक्ति) को प्राप्त होतीभई जो ये स्त्रियें ब्रह्मादिक देवताओंकोभी पूज्य श्रीकृष्णजीमें भर्तृबुद्धिकरके चरणसेवा प्रेमसे भई उन सोहल हजार महिषीयोंका तप-पुण्य हम क्या वर्णन करें ॥ ११ ॥

इति श्रीमहावनशास्त्रिकृत—श्रीमद्भागवतान्तर्गत-
महिषीगीतभाषानुवादः समाप्तः ॥ ६ ॥

॥ श्रीअवधूतवेषाय नमः ॥

अथ

अवधूतगीतम् ।

अवधूतं द्विजं कंचिच्चरन्तमकुतोभयम् ॥
कविं निरीक्ष्य तरुणं यदुः प्रपच्छ धर्मवित्॥१॥

एकसमय श्रीकृष्णभगवान् उद्धवजीको वचन बोले—कि, हे उद्धव ! ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे बलदेवजीसहित अवतार लेकर पृथ्वीका भार हरणरूप कार्य मैंने संपादन किया और यादवोंका भार जो बाकी रहाहै सोही ब्राह्मणोंके शापसे नष्टप्राय हुआ परस्पर कलह करके नष्ट होजावेगा सो हे उद्धव ! आजसे सातवें दिनमें इस द्वारकापुरीको समुद्र डुबावेगा सो उस समय मैंभी अपने लोकको जाऊंगा फिर यह भूलोक मेरेसे त्यक्त हुआ अ-

मंगलरूप होजावेगा. इससे हे भद्र! तू यहां मत निवास करे यदि कहो कि, मेरेको क्या कर्तव्य है? सो सुन कि इन स्वजन-बंधुगणोंमें सर्वथा स्नेहका परित्याग कर मेरेमें मन लगाकर समदृष्टि हुआ सब जगह मेरेकोही देखताहुआ अर्थात् सब जगत्को मेराही शरीर समझकर पृथ्वीमें रटनकर स्नेहत्याग वैराग्यविना नहीं होसकता वैराग्य सब पदार्थोंमें नश्वरत्व बुद्धिविना नहींहोता और नश्वरत्वबुद्धि विवेकविना नहींहोती इससे हे उद्धव! विवेकबुद्धिसेही विषयवासना—निवृत्तिपूर्वक इस आत्माका उद्धार होताहै इस विषयमें अन्वयव्यतिरेकसे निश्चयके लिये अमिततेजस्वी अवधूत और परमविवेकी यदुमहाराजके संवादरूप इतिहासको दृष्टांतपूर्वक वृद्धलोग वर्णन करतेहैं सो हे उद्धव! विवेकबुद्धिसेही आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होतीहै इससे तेरे निश्चयकेलिये अवधूत-यदुमहाराजका संवादरूप इतिहास तू श्रवण कर. मैं कहताहूं. सो अभ्यंग[1]आदि संस्काररहित देहवाले, निर्भय विचरनेवाले, विवेकवाले और तरुणावस्थावाले द्विज (ब्राह्मण) को देखकर धर्मज्ञ यदुराजा पूछनेलगे ॥ १ ॥

॥ यदुरुवाच ॥

कुतो बुद्धिरियं ब्रह्मन्नकर्तुः सुविशारदा ॥
यामासाद्य भवाँल्लोकं विद्वांश्चरति बालवत् ॥२॥

यदु बोले—हे ब्रह्मन्! इंद्रियोंकी प्रीतिकेलिये कर्मोंको नहीं

[1] तैल बुटना मलकर स्नान।

करनेवाले आपको सब लोकसे विलक्षण बुद्धि कहांसे उत्पन्न भई? जिस बुद्धिको प्राप्त होकर ज्ञानवान् हुएभी आप बालक (अज्ञ) की तुल्य लोकमें विचरतेहो ॥ २ ॥

प्रायो धर्मार्थकामेषु विवित्सायां च मानवाः ॥
हेतुनैव समीहन्ते आयुषो यशसः श्रियः ॥ ३ ॥

प्रायः सब मनुष्य आयु, यश, श्री इनके लिये धर्म, अर्थ, काम और इनके साधनविचारमें प्रवृत्त हैं ॥ ३ ॥

त्वं तु कल्पः कविर्दक्षः सुभगोऽमृतभाषणः ॥
न कर्ता नेहसे किंचिज्जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥४॥

आप तो समर्थ, ज्ञानी, निपुण और सुंदर अमृतकी तुल्य भाषणयुक्त हुए जड उन्मत्त पिशाचकी नाईं वर्तमान हुए, नहीं तो किसी वस्तुकी इच्छा करतेहो, और नहीं किसी कर्मके करनेवाले हो ॥ ४ ॥

'आपको यह बडा आनंद कहांसे है यह पूछतेहैं'—

जनेषु दह्यमानेषु कामलोभदवाग्निना ॥
न तप्यसेऽग्निना मुक्तो गङ्गाम्भस्थ इव द्विपः ॥५॥

हे द्विज! समस्त जन कामलोभात्मक अग्निकरके तपायमान हैं और आप तो गंगाके जलकरके तापसे मुक्त गजकीनाईं कामादिरूप अग्निकरके छुटेहुए तपायमान नहींहैं ॥ ५ ॥

त्वं हि नः पृच्छतां ब्रह्मन्नात्मन्यानन्दकारणम् ॥
ब्रूहि स्पर्शविहीनस्य भवतः केवलात्मनः ॥ ६ ॥

हे ब्रह्मन्! विषयभोगरहित ज्ञानानंदैकस्वरूप आपके आ-

नंदका कारण क्या है यह पूछनेवाले हमको आप कहो ॥६॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

यदुनैवं महाभागो ब्रह्मण्येन स्वमेधसा ॥
पृष्टः सभाजितः प्राह प्रश्रयावनतं नृपम् ॥ ७॥

श्रीभगवान् बोले—हे उद्धव ! ब्राह्मणभक्त, अत्यंतबुद्धियुक्त यदुसे सत्कारयुक्त हो भगवान्‌की उपासनादि तेजयुक्त वह ब्राह्मण प्रीतिपूर्वक प्रार्थनाके गोचर हुआ नम्रतापूर्वक नमनवाले यदुको वचन बोले ॥ ७ ॥

॥ ब्राह्मण उवाच ॥

सन्ति मे गुरवो राजन् बहवो बुद्ध्युपाश्रिताः ॥
यतो बुद्धमुपादाय मुक्तोटामीह तान् शृणु ॥८॥

हे राजन् ! बुद्धिकरके स्वीकृत मेरे गुरु बहुत हैं जिन गुरुओंसे बुद्धि ग्रहण (शिक्षा ले) कर तापत्रयसे छुटाहुआ इस लोकमें मैं विचरताहूं तिन गुरुओंको श्रवण करो ॥ ८ ॥

पृथिवी वायुराकाशमापोग्निश्चन्द्रमा रविः ॥
कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतङ्गो मधुकृद्गजः ॥९॥
मधुहा हरिणो मीनः पिङ्गला कुररोऽर्भकः ॥
कुमारी शरकृत्सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ॥१०॥

पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चंद्रमा, सूर्य, कपोत, अजगर, सिंधु, पतंग, भ्रमर, गज, मक्षिका, मृग, मीन, पिंगला (वेश्या), कुरर (पक्षिविशेष), अर्भक, कुमारी, शरकर्ता, सर्प, ऊर्णनाभि, सुपेशकृत (कीटका सुंदर रूप करनेवाला) ॥ ९ ॥ १० ॥

एते मे गुरवो राजन् चतुर्विंशतिराश्रिताः ॥
शिक्षावृत्तिभिरेतेषामन्वशिक्षमिहात्मनः॥ ११ ॥

हे राजन् ! बुद्धिकरके स्वीकृत ये चौबीस मेरे गुरु हैं इन्होंकी वृत्तिकरके शिक्षणीय अर्थों (त्यागने योग्य और ग्रहण करनेयोग्य अर्थ) को मैं सीखताभया अर्थात् उन गुरुओंसे मैं शिक्षित हूं ॥ ११ ॥

यतो यदनुशिक्षामि यथा वा नाहुषात्मज ॥
तत्तथा पुरुषव्याघ्र निबोध कथयामि ते ॥१२॥

हे नाहुषात्मज ! (यदो) जिस जिससे जो जो मैंने जिसप्रकार सीखाहै वह वह तिस प्रकारसे तेरेको कहताहूं. हे पुरुषव्याघ्र ! तू सुन ॥ १२ ॥

' पर्वतवृक्षादिरूप और मार्गादिरूपसे पृथ्वी दो प्रकारकी है तहां मार्गादिरूप पृथ्वीसे मैंने क्षमा सीखीहै '—

भूतैराक्रम्यमाणोपि धीरो दैववशानुगैः ॥
तद्विद्वान्न चलेन्मार्गादन्वशिक्षं क्षितेर्व्रतम् ॥१३॥

जैसे जनोंके पादविक्षेपआदि कर्मोंसे पीड्यमान भूमि चलायमान नहीं होतीहै तैसे अपने प्रारब्धसे प्रेरित प्राणियोंकरके पीड्यमानभी हो पर दैवगतिको जानकर अनुद्विग्नचित्त हो पुरुष धर्ममार्गसे न चले यह व्रत मैंने पृथ्वीसे सीखा ॥ १३ ॥

'पर्वत-वृक्षरूप पृथ्वीसे मैंने जो व्रत सीखाहै वही दर्शातेहैं'—

शश्वत्परार्थसर्वेहः परार्थैकान्तसंभवः ॥

साधुः शिक्षेत भूभृत्तो नगशिष्यः परात्मताम् ॥१४॥

जैसे वृक्ष,तृण, झरण, फूल, फल ये सब वस्तु पर्वतकी परा-
र्थ हैं तैसे सर्वकालमें परपुरुषोंकेलिये संपूर्णचेष्टादि व्यापार क-
रनेवाला तथा परपुरुषोंके लियेही जन्म लेनेवाला साधुपुरुष
पर्वतसे परोपकार सीखे तथा जैसे जो पुरुष वृक्षोंको उपाडता
और काटताहै तिसकोभी वे वृक्ष सहतेहैं तैसे वृक्षनका शिष्य
हुआ पुरुष वृक्षोंसे पराधीनता सीखे ॥ १४ ॥

'वायु, प्राण और बाह्यके भेदसे दो प्रकारका है तहां प्रा-
णवायुसे शिक्षणीय कहतेहैं'—

प्राणवृत्त्यैव संतुष्येन्मुनिर्नैवेन्द्रियप्रियैः ॥

ज्ञानं यथा न नश्येत नावकीर्येत वाङ्मनः॥१५॥

जैसे प्राण आहारमात्रकीही अपेक्षा करताहै और पदार्था-
न्तरकी अपेक्षा नहीं करताहै तैसे मुनिजनभी प्राणधारणोपयुक्त
जीविकामात्रकीही अपेक्षा करे विषयोंपर इंद्रियोंको न चलावे
आहार न मिले तो मनवाणीका विक्षेप होकर ज्ञानकाभी ना-
श होजावे इससे मुनिजन एक आहारमात्रसे संतोष मानकर उ-
ससे अधिककी अपेक्षा न करे ॥ १५ ॥

'बाह्यवायुसे विषयोंमें अनासक्तिरूप विद्या सीखी यही क-
हतेहैं'—

विषयेष्वाविशन्योगी नानाधर्मेषु सर्वतः ॥

गुणदोषव्यपेतात्मा न विषज्जेत वायुवत्॥१६॥

जैसे वायु सर्वत्र प्रविष्टभी है पर कहीं आसक्त नहीं होता
तैसे सुखदुःखादि—चिंतारहित चित्तवाला योगिजन नानाविध
रूपरसादि विषयोंमें प्रविष्ट हुआ भोगेभी पर उन्होंमें आ-
सक्ति न करे॥ १६ ॥

'औरभी जो कुछ वायुसे सीखाहै सो कहतेहैं'—

पार्थिवेष्विह देहेषु प्रविष्टस्तद्गुणाश्रयः ॥

गुणैर्न युज्यते योगी गन्धैर्वायुरिवात्मदृक् ॥ १७ ॥

जैसे वायु गंधसे युक्त हुआ चलताहै परंतु गंध कछु वायु-
का गुण नहीं पृथ्वीका है. तैसे देवत्व,मनुष्यत्व, स्थूलत्व,कृशत्व
आदि देहके धर्मोंकरके युक्त प्रतीयमान योगी तिन उक्त गु-
णोंकरके योगिजन मैं देव हूं मैं मनुष्य हूं मैं स्थूल हूं ऐसा
अभिमान नहीं करे क्योंकि आत्मा तो देहसे भिन्न है देहादिकमें
देहात्माभिमान आत्मस्वरूपको नहीं जाननेसे है ॥ १७ ॥

'आकाशसे शिक्षित विद्या कहतेहैं'—

अन्तर्हितश्च स्थिरजङ्गमेषु
ब्रह्मात्मभावेन समन्वयेन ॥
व्याप्त्या व्यवच्छेदमसङ्गमात्मनो
मुनिर्नभस्त्वं विततस्य भावयेत् ॥ १८ ॥

जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक है और महान् है. और
सूक्ष्मरीतिसे घटमें दीखताहै परंतु घटसे आकाशका संबंध न-
हीं तैसे देहके अंतर्गत जो आत्मा है सो देहसे मिलाहुआभी है
परंतु देहकरके लिपायमान नहीं होता क्योंकि देह परिच्छिन्न

है और आत्मवस्तु ज्ञानव्याप्तिसे व्यापक है जैसे आकाश सब जगँह है तैसे आत्मस्वरूपभी स्थावरजंगम शरीरमेंभी व्याप्त है, तात्पर्य यह है कि आत्मवस्तु असंग है ॥ १८ ॥

तेजोबन्नमयैर्भावैर्मेघाद्यैर्वायुनेरितैः ॥
न स्पृश्यते नभस्तद्वत्कालसृष्टैर्गुणैः पुमान् ॥१९॥

जैसे वायुके प्रेरेहुए मेघ आकाशको स्पर्श नहीं करसकते तैसे कालके रचे गुणों (देहेंद्रियादिक) करके जीवभी लिपायमान नहींहोता स्वरूपसे जीवात्मा असंग है ॥ १९ ॥

'स्वच्छत्वादिक गुण जलसे मैंने सीखे सो कहतेहैं'—

स्वच्छः प्रकृतितः स्निग्धो माधुर्यस्तीर्थभूर्नृणाम् ॥
मुनिः पुनात्यपां मित्रमीक्षोपस्पर्शकीर्तनैः ॥ २० ॥

जैसे स्वभावसे स्नेह, माधुर्य्ययुक्त जल अतिनिर्मल है और मनुष्योंका पवित्रस्थान है तैसे मुनि निर्मल हो सबके ऊपर स्नेह कर मीठा बोलताहुआ दर्शन-स्पर्शन-कीर्तनकरके सबको पापसे छुटाकर पवित्र करे ॥ २० ॥

'अग्निसे शिक्षित विद्या दर्शातेहैं'—

तेजस्वी तपसा दीप्तो दुर्धर्षोदरभाजनः ॥
सर्वभक्षोपि युक्तात्मा नादत्ते मलमग्निवत् ॥ २१ ॥

जैसे तेजस्त्वादियुक्त अग्नि अयुक्त वस्तुको दग्ध कर दोषयुक्त नहीं होताहै तैसे तेजस्त्वआदि गुणयुक्त परमेश्वरके ध्यानमें तत्पर तपकरके प्रकाशित परिग्रहरहित मुनि निषिद्धवस्तु प्रमादसे यदि भक्षण करे तोभी निषिद्धभक्षणसे दोषयुक्त नहीं

होता जैसे अग्नि कहीं काष्ठभस्मादिकमें गुप्त है और कहीं स्पष्ट है ॥ २१ ॥

क्वचिच्छन्नः क्वचित्स्पष्ट उपास्यः श्रेय इच्छताम् ॥
भुङ्क्ते सर्वत्र दातॄणां दहन् प्रागुत्तराशुभम् ॥ २२ ॥

श्रेयको इच्छावाले पुरुषोंका उपास्य है और होम करनेवालोंके अगले होनेवाले पापको दग्ध कर उनका हुतवस्तुको भोगताहै तैसे मुनिभी हैं ॥ २२ ॥

स्वमायया सृष्टमिदं सदसल्लक्षणं विभुः ॥
प्रविष्ट ईयते तत्तत्सरूपोग्निरिवैधसि ॥ २३ ॥

जैसे अग्नि स्वभावसे आकारविशेषरहितभी है पर काष्ठमें स्थित हुआ काष्ठके सदृश आकारवाला प्रतीत होताहै तैसे यह परमात्मा प्राकृतआकारविशेषरहितभी है परंतु अपने संकल्पसे सृष्ट देवतिर्यगादि देहोंमें प्रविष्ट हुए प्रतीत होतेहैं ॥ २३ ॥

'चंद्रमासे जो विद्या सीखी सो कहतेहैं'—

विसर्गाद्याः श्मशानान्ता भावा देहस्य नात्मनः ॥
कलानामिव चन्द्रस्य कालेनाव्यक्तवर्त्मना ॥ २४ ॥

जैसे चंद्रमाको कलाओंकाही उत्पत्ति-क्षय होतेहैं चंद्रका नहीं होता तैसे नहीं लक्षित है वेग जिसका ऐसे कालकरके देहके जन्म-मरणांत विकार होतेहैं आत्मस्वरूपके नहीं होते ॥ २४ ॥

'अग्निसे देहोंका क्षणभंगुरसा निश्चय कर देहादिकोंमें वैराग्यविद्या सीखीहै सो कहतेहैं'—

कालेन ह्योघवेगेन भूतानां प्रभवाप्ययौ ॥
नित्यावपि न दृश्येते आत्मनोग्नेर्यथार्चिषाम्॥२५॥

जैसे अग्निके ज्वालाओंकी उत्पत्ति और नाश क्षण क्षणमें होतेहैं परंतु दीखते नहीं तैसेही नदीप्रवाहके वेगतुल्य वेगवाले कालकरके आत्मसंबधी देहोंका क्षणमें उत्पत्ति-विनाश नित्य होतेहैं परंतु दीखते नहीं ॥ २५ ॥

'सूर्यसे शिक्षित विद्या कहतेहैं'—

गुणैर्गुणानुपादत्ते यथाकालं विमुञ्चति ॥
न तेषु युज्यते योगी गोभिर्गा इव गोपतिः ॥ २६ ॥

जैसे सूर्य किरणों करके जलोंको ग्रीष्मादि कालमें ग्रहण कर लेताहै वर्षाकालमें जलोंको छोड देताहै उसमें आसक्ति नहीं करता तैसे देहादिकसे अतिरिक्त आत्माका अनुसंधान करनेवाला योगी पुरुष इंद्रियोंकरके अपेक्षित पदार्थोंका स्वीकार करलेताहै इतर कोई याचना करनेवाला आया तो तत्काल उस पदार्थको देदेवे ममता न रक्खे ॥ २६ ॥

बुध्यते स्वेन भेदेन व्यक्तिस्थ इव तद्गतः ॥
लक्ष्यते स्थूलमतिभिरात्मा चावस्थितोर्कवत्॥२७॥

वास्तविक सूर्य एकहीं है परंतु जलादिकमें प्रतिबिंब पडनेसे जैसे स्थूलमति पुरुषोंको अनेक दीखतेहैं तैसे ज्ञानैकाकारतासे जीवात्मा सब जगँह एकही है परंतु स्थूलमति देहात्माभिमानी पुरुष देवतिर्यङ्मनुष्यादि देहभेदसे नानाप्रकारके मानकर परस्परमें द्वेष करने लगजातेहैं इससे ज्ञानैकाकारतासे सब जीव एकही हैं ॥ २७ ॥

'कपोतसे शिक्षित विद्या कहतेहैं'—

नातिस्नेहः प्रसङ्गो वा कर्तव्यः क्वापि केनचित् ॥
कुर्वन्विन्देत संतापं कपोत इव दीनधीः ॥ २८ ॥

विवेकी पुरुष किसीके संग अत्यंत स्नेह और अत्यंत आसक्ति किसी विषयमेंभी न करे क्योंकि स्नेह करताहुआ विवेकहीन हो कपोतकी तुल्य संतापको प्राप्त होजावे ॥ २८ ॥

कपोतः कश्चनारण्ये कृतनीडो वनस्पतौ ॥
कपोत्या भार्यया सार्धमुवास कतिचित्समाः ॥२९॥

हे राजन् ! कोई कपोत (कबूतर) वनमें वृक्षके ऊपर आल्हना (घर) बनाकर अपनी भार्या कपोतीके संग कितनेक वर्षपर्यंत निवास करताभया ॥ २९ ॥

कपोतौ स्नेहगुणितहृदयौ गृहधर्मिणौ ॥
दृष्टिं दृष्ट्याङ्गमङ्गेन बुद्धिं बुद्ध्या बबन्धतुः ॥३०॥

वे दोनों स्त्रीपुरुष (कपोत कपोतिनी) परम स्नेहसे दृष्टि दृष्टिसे, हृदय हृदयसे, अंग अंगसे, बुद्धि बुद्धिसे बंधेहुए ॥ ३० ॥

शय्यासनाटनस्थानवार्ताक्रीडाशनादिकम् ॥
मिथुनीभूय विस्रब्धौ चेरतुर्वनराजिषु ॥ ३१ ॥

मरणशंकारहित हुए शय्या, आसन, स्थान, क्रीडा, भोजन आदिकोंको एक ठौर बैठकर वनपंक्तियोंमें एकत्र करतेरहे ॥ ३१ ॥

यं यं वाञ्छति सा राजंस्तर्पयन्त्यनुकम्पिता ॥
तं तं समनयत्कामं कृच्छ्रेणाप्यजितेन्द्रियः ॥ ३२॥

हे राजन् ! वह कपोती अपने हावभाव लावण्य मधुरभाषण-से इनसे कपोतको प्रसन्न करके दीन होकर उससे जो जो वस्तु मांगे वही वही वस्तु अतिकष्टसे अत्यंत आसक्त हुआ वह कपोत उसको प्राप्त करतारहा ॥ ३२ ॥

कपोती प्रथमं गर्भं गृह्णती काल आगते ॥
अण्डानि सुषुवे नीडे स्वपत्युः सन्निधौ सती ॥३३॥

कितनेक दिनोंमें गर्भवती पतिव्रता कपोती प्रसूतिकालके आनेपर अपने पतिके समीप नीड (आल्हना) में अंडोंको उत्पन्न करतीभई ॥ ३३ ॥

तेषु काले व्यजायन्त रचितावयवा हरेः ॥
शक्तिभिर्दुर्विभाव्याभिः कोमलाङ्गतनूरुहाः ॥३४॥

उन जलसे भरे अंडोंमें अचिंतनीय भगवान्की शक्तिकरके हस्तपादादियुक्त, कोमल अंगोंमें रोमयुक्त, बालक परिपाककालमें उत्पन्न होतेभये ॥ ३४ ॥

प्रजाः पुपुषतुः प्रीतौ दम्पती पुत्रवत्सलौ ॥
शृण्वन्तौ कूजितं तासां निर्वृतौ कलभाषितैः ॥३५॥

पुत्रवत्सल वे स्त्री-पुरुष अपनी प्रजाओंके मधुर शब्द सुनकर अत्यंत सुखयुक्त हुए प्रीतिपूर्वक अपनी प्रजाओंका पोषण करतेभये ॥ ३५ ॥

तासां पतत्रैः सुस्पर्शैः कूजितैर्मुग्धचेष्टितैः ॥

प्रत्युद्गमैरदीनानां पितरौ मुदमापतुः ॥ ३६ ॥

हृष्ट उन प्रजाओंके पक्ष, पक्षोंका सुखस्पर्श, उनका मधुरशब्द, ऊपरने उडना, ऐसी ऐसी क्रियाओंकरके वे कपोतकपोतिनी बडे आनंदको प्राप्त होतेभये ॥ ३६ ॥

स्नेहानुबद्धहृदयावन्योन्यं विष्णुमायया ॥
विमोहितौ दीनधियौ शिशून्पुपुषतुः प्रजाः ॥ ३७ ॥

परस्पर स्नेहसे बंधा है हृदय जिनका, प्रजाओंके पोषणमें आकुल चित्तवाले, भगवान्की मायासे मोहित हुए वे दोनों जन अपने बालकोंको पालतेभये ॥ ३७ ॥

एकदा जग्मतुस्तासामन्नार्थौ तौ कुटुम्बिनौ ॥
परितः कानने तस्मिन्नर्थिनौ चेरतुश्चिरम् ॥ ३८ ॥

एककालमें वे कुटुंबी प्रजाओंके अन्नकेवास्ते अपने घरसे दूर उस वनमें चारों ओर चिरकाल फिरते रहे ॥३८॥

दृष्ट्वा तॉंल्लुब्धकः कश्चिद्यदृच्छातो वनेचरः ॥
जगृहे जालमावृत्य चरतः स्वालयान्तिके ॥ ३९ ॥

उसासमय अकस्मात् वनमें विचरनेवाला कोई लुब्धक (व्याध) आकर अपने नीडके समीपमें क्रीडा करनेवाले कपोतपुत्रोंको देखकर जाल गेरकर उनको ग्रहण करताभया ॥ ३९ ॥

कपोतश्च कपोती च प्रजापोषे सदोत्सुकौ ॥
गतौ पोषणमादाय स्वनीडमुपजग्मतुः ॥ ४० ॥

अपनी प्रजाओंके पोषणमें निरंतर उत्साहवाले उनके आहारके लिये वनमें गयेहुए उनका पोषक अन्न ग्रहण कर वह कपोत कपोती अपने नीडके समीप आतेभये ॥ ४० ॥

कपोती स्वात्मजान्वीक्ष्य बालकाञ्जालसंवृतान् ॥
तानभ्यधावत्क्रोशन्ती क्रोशतो भृशदुःखिता ॥४१॥

वह कपोती जालसे बँधे अतिदुःखसे पुकारनेवाले अपने पुत्रोंको देखकर आपभी दुःखसे पुकारतीहुई अपने बालकोंके प्रति दौडी ॥ ४१ ॥

साऽसकृत्स्नेहगुणिता दीनचित्ताऽजमायया ॥
स्वयं चाबद्ध्यत शिचा बद्धान्पश्यन्त्यपस्मृतिः॥४२॥

भगवान्‌की मायाकरके उनमें जो अतिस्नेह तिससे बंधीहुई दीनचित्तवाली, जीवनस्मृतिरहित हुई जालमें बँधे हुए बालकोंको देखनेवाली आपभी जालकरके बंधीगई अर्थात् जालमें पडगई ॥ ४२ ॥

कपोतश्चात्मजान्बद्धानात्मनोप्यधिकान्प्रियान् ॥
भार्यां चात्मसमां दीनो विललापातिदुःखितः॥४३॥

अपने शरीरसेभी अधिक प्रिय जालमें बंधेहुए अपने पुत्रोंको तथा अपनी तुल्य अपनी भार्याको देखकर उनमें आसक्तिसे अतिदुःखित हुआ कपोत बडा विलाप करताभया॥४३॥

अहो मे पश्यतापायमल्पपुण्यस्य दुर्मतेः ॥
अतृप्तस्याकृतार्थस्य गृहस्त्रैवर्गिको हतः ॥ ४४ ॥

हे जनो! अहो मेरा विनाश देखो कि अल्पपुण्य, दृष्ट सुखोंसे अतृप्त, परलोकसुखके साधनोंकोभी न संपादन करनेवाला दुर्मति मेरा धर्म-अर्थ-कामका साधन गृहस्थाश्रम नष्ट होगया ॥ ४४ ॥

अनुरूपानुकूला च यस्य मे पतिदेवता ॥
शून्ये गृहे मां संत्यज्य पुत्रैः स्वर्याति साधुभिः॥४५॥

मैंही हूं पतिरूप देवता जिसकी ऐसी मेरे अनुकूल अनुरूप मेरी भार्या शून्यघरमें मेरेको त्यागकर साधु पुत्रोंके साथ स्वर्गको जातीहै ॥ ४५ ॥

सोऽहं शून्ये गृहे दीनो मृतदारो मृतप्रजः ॥
जिजीविषे किमर्थं वा विधुरो दुःखजीवितः ॥४६॥

मरगयेहैं स्त्रीपुत्र जिसके ऐसा भार्याहीन पुत्रनके वियोगसे दुःखित मैं शून्यगृहमें किसकेलिये जीवनेकी इच्छा करताहूं अर्थात् मेरा तो सर्वस्व नष्ट होगया ॥ ४६ ॥

तांस्तथैवावृतान् शिग्भिर्मृत्युग्रस्तान्विचेष्टतः ॥
स्वयं च कृपणः शिक्षु पश्यन्नप्यबुधोऽपतत्॥४७॥

जालसे आवृत चेष्टाशून्य उन बालकोंको देखकर मोहसे आसक्त हुआ वह अज्ञ कपोत आपभी जालमें पडताभया॥४७॥

तं लब्ध्वा लुब्धकः क्रूरः कपोतं गृहमेधिनम् ॥
कपोतकान्कपोतीं च सिद्धार्थः प्रययौ गृहम् ॥४८॥

वह क्रूर व्याध, कपोत, कपोती और उनके पुत्र इनको ग्रहण करके सिद्धकार्य हुआ अपने घरको जाताभया ॥४८॥

एवं कुटुम्ब्यशान्तात्मा द्वन्द्वारामः पतत्रिवत् ॥

पुष्णन्कुटुम्बं कृपणः सानुबन्धोऽवसीदति ॥४९॥

अवधूत कहनेलगे कि, हे राजन् ! कपोतकी नाईं ऐसे अन्य पुरुषभी सुखदुःखआदियोंमें रमनेवाला रागलोभ आदियोंसे क्षुब्धचित्त कुटुंबका पोषण करताहुआ पुत्र कलत्रादिसहित आसक्तिसे नाशको प्राप्त होताहै ॥ ४९ ॥

यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् ॥
गृहेषु खगवत्सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः ॥५०॥ ❀

जो पुरुष आवरणरहित मुक्तिका साधन मनुष्यदेहको प्राप्त होकर कपोतकीनाईं गृहमें आसक्त है वह मोक्षमार्गको छोडकर अधोगतिको प्राप्त होताहै विवेकिजन ऐसे जानतेहैं ॥ ५० ॥

'अजगरसे शिक्षित विद्याको कहतेहैं'—

सुखमैन्द्रियकं राजन् स्वर्गे नरक एव च ॥
देहिनां यद्यथा दुःखं तस्मान्नेच्छेत तद्बुधः ॥ ५१ ॥

अवधूतजी बोले—हे राजन् ! देहधारियोंको इंद्रियजन्यसुख जैसे स्वर्गमें होताहै तैसे सूकरादि नारकीय योनियोंमेंभी इच्छाके विनाही दुःखकीनाईं सुख होताहै इससे इंद्रियजन्यसुख प्रारब्धाधीन है प्रारब्धमें रहे तो अवश्य होताहै प्रारब्धके न होनेसे उद्यमसे होना दुर्लभ है तस्मात् विवेकिजन ऐसा निश्चय करके इंद्रियजन्यसुखकी इच्छा न करे ॥ ५१ ॥

ग्रासं सुमृष्टं विरसं महान्तं स्तोकमेव वा ॥
यदृच्छयैवापतितं ग्रसेदजगरोऽक्रियः ॥ ५२ ॥

स्वादु वा रसरहित वा उदरपूर्तिपर्याप्त वा थोडा उद्यमके विना अनायाससे प्राप्त आहार जैसे उदासीन अजगरवृत्तिवाला स्वीकार करे तैसे विवेकी जनभी शरीरनिर्वाहकेलिये अनायाससे प्राप्त आहारको स्वीकार करे ॥ ५२ ॥

'जब कुछभी नहीं आवे तव अजगरवृत्तिवालेको क्या कर्तव्य है सो कहतेहैं'—

शयीताहानि भूरीणि निराहारोऽनुपक्रमः ॥
यदि नोपनमेद्ग्रासो महाहिरिव दिष्टभुक् ॥ ५३ ॥

यदि यदृच्छापूर्वक आहार न आवे तव अजगरकी नाईं आहारका प्रतिबंधक प्रारब्धकर्मका अनुभव करताहुआ उद्यमरहित हो विवेकी पुरुष बहुतदिनपर्यंत गुपचुप स्थिर रहे॥५३॥

'समर्थभी क्या गुपचुप बैठा रहे इस विषयका उत्तर कहतेहैं'—

ओजःसहोबलयुतं बिभ्रद्देहमकर्मकम् ॥
शयानो वीतनिद्रश्च नेहेतेन्द्रियवानपि ॥ ५४ ॥

ओज (इंद्रियसामर्थ्य) सह (मनका सामर्थ्य) बल (शरीरका सामर्थ्य) इन्होंकरके युक्त, व्यापाररहित देहको धारण करके सोताही रहे और स्वार्थमें दृष्टि न देकर परमात्माकाही स्मरण करताहुआ चक्षुरादि इंद्रिययुक्त हुआभी भगवद्व्यतिरिक्त विषयोंपर दर्शनादिव्यापार न करे. इस रीतिसे विवेकिजन रहे ॥ ५४ ॥

'समुद्रसे शिक्षित विद्याको कहतेहैं'—

मुनिः प्रसन्नगम्भीरो दुर्विगाह्यो दुरत्ययः ॥
अनन्तपारो ह्यक्षोभ्यः स्तिमितोद इवार्णवः ॥५५॥

जैसे निश्चल उदकयुक्त, विकाररहित, अनंतपार, उल्लंघन करनेमें और अवगाहन करनेमें अशक्य, अत्यंत गांभीर्ययुक्त समुद्रके तुल्य मुनिजन रहे ॥ ५५ ॥

समृद्धकामो हीनो वा नारायणपरो मुनिः ॥
नोत्सर्पेत न शुष्येत सरिद्भिरिव सागरः ॥ ५६ ॥

वर्षाकालमें नदियोंके जलोंकरके वृद्धिंगत समुद्र जैसे नहीं उछले और ग्रीष्म ऋतुमें नदियोंके जलसे रहित हुआ न सूके तैसे नाना प्रकारकी समृद्धियोंकरके युक्त हुआ तथा उन्होंसे हीन हुआभी मुनिजन, न तो हर्ष करे न शोक करे किंतु नारायणपर होरहे ॥ ५६ ॥

'इंद्रियोंके रूप, गंध, स्पर्श, शब्द, रस ये पांच विषय हैं तिनमें जैसे पतंग, भ्रमर, गज, हरिण और मीन ये नाशको प्राप्त होतेहैं तैसे आसक्त हो जीवभी नष्ट होतेहैं तहां प्रथम पतंगसे शिक्षित विद्याको कहतेहैं'—

दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेन्द्रियः ॥
प्रलोभितः पतत्यन्धे तमस्यग्नौ पतङ्गवत् ॥ ५७ ॥

जैसे पतंग अग्नि-दीप-आदियोंको देखकर उन्होंके रूपसे प्रलोभित हुआ भोग्यबुद्धिसे उसमें पडकर नाशको प्राप्त होताहै. तैसे भगवान्‌की मायाकी तुल्य मोह करनहार इस स्त्रीको देखकर उसके हावभावकटाक्षोंकरके प्रलोभित हुआ अजितेंद्रिय पुरुष नरकमें पडताहै ॥ ५७ ॥

'उक्त अर्थको फिर दिखातेहैं'—

योषिद्धिरण्याभरणाम्बरादि-
द्रव्येषु मायारचितेषु मूढः ॥
प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्ध्या
पतङ्गवन्नश्यति नष्टदृष्टिः ॥ ५८ ॥

ईश्वरकी मायासे रचित स्त्री, सुवर्ण, भूषण, वस्त्रआदिरूप द्रव्यमें भोगबुद्धिकरके आसक्तचित्त मायासे मोहित नष्टदृष्टि हुआ पुरुष पतंगकीनाई नाशको प्राप्त होताहै ॥ ५८ ॥

'भ्रमरसे शिक्षित विद्याको कहतेहैं'—

स्तोकं स्तोकं ग्रसेद्ग्रासं देहो वर्तेत यावता ॥
गृहानहिंसन्नातिष्ठेद्वृत्तिं माधुकरीं मुनिः ॥ ५९ ॥

जैसे भ्रमर पुष्पोंमेंसे अल्प अल्पही रस ग्रहण करताहुआ जैसे रहताहै तैसे मुनिजन जितने आहारकरके देह रहे उतनाही आहार स्वीकार करे परंतु गृहस्थपुरुषोंमें पीडा न देकर स्वल्प स्वल्पही आहार स्वीकार करताहुआ भ्रमरकी वृत्तिमें स्थित रहे तात्पर्य यह है कि, अत्यंत गंधके लोभसे कमलमें निवास करताहुआ भ्रमर सूर्यके अस्त हुएपर कमलके मुकुलानेसे उसमें बंध जाताहै तैसे गुणके लोभसे घरमें स्थितहुआ स्त्री-पुत्रोंके मोहसे मुनिभी बंध जाताहै ॥ ५९ ॥

अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः ॥
सर्वतः सारमादद्यात्पुष्पेभ्य इव षट्पदः ॥ ६० ॥

जैसे छोटे बडे पुष्पोंसे भ्रमर सारको ग्रहण करताहै तैसे छोटे बडे शास्त्रोंसे विवेकिपुरुष सारको ग्रहण करे ॥ ६० ॥

'मक्षिकासे शिक्षित विद्याको कहतेहैं'—

सायंतनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षितम् ॥
पाणिपात्रोदरामत्रो मक्षिकेव न संग्रही ॥ ६१ ॥
सायंतनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षुकः ॥
मक्षिका इव संगृह्णन् सह तेन विनश्यति ॥ ६२ ॥

पुरुष संग्रही होय तो मक्षिकाकी तुल्य न हो क्योंकि नाशको प्राप्त हो जैसे मधु (सहद) के लोभसे मधुजीवी मक्षिकाको मार देतेहैं तैसे विवेकी भिक्षुक पुरुष यह अन्न सायंकालके वास्ते वा यह अन्न अगले दिनके वास्ते है इसप्रकार भिक्षित अन्नका संग्रह न करे किंतु हस्तही भोजनका पात्र और उदरही अन्न रखनेका पात्र समझकर कालको बितावे तात्पर्य यह है कि संग्रह करनेसे मक्षिकाकीनाईं नाशही होताहै ॥ ६१ ॥ ॥ ६२ ॥

'गजसे शिक्षित विद्याको कहतेहैं'—

पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद्दारवीमपि ॥
स्पृशन् करीव बद्ध्येत करिण्या अङ्गसङ्गतः॥६३॥

संन्यासी जन काष्ठकी बनी स्त्रीको पाँवसेभी स्पर्श न करे यदि स्पर्श करे तो जैसे हथिनीके अंगसंगसे मोहितहुआ हाथी हाथिवानसे बंधनको प्राप्त होताहै तैसे संन्यासीभी संसारमें बंध जावे ॥ ६३ ॥

नाधिगच्छेत्स्त्रियं प्राज्ञः कर्हिचिन्मृत्युमात्मनः ॥
बलाधिकैः स हन्येत गजैरन्यैर्गजो यथा ॥ ६४ ॥

प्राज्ञ विवेकी पुरुष स्त्रीको कदापि प्राप्त न हो अर्थात् भोग्यबुद्धिसे उसमें आसक्त न हो किंतु उसको अपना मृत्यु देखे जो आसक्त हो तो बलाधिक पुरुषोंसे नाशको प्राप्त हो जैसे हथिनीमें आसक्त हाथी बलवान् हाथियोंसे नाशको प्राप्त होजाताहै विवेकिजन तैसे आपभी नाशको प्राप्त होजाताहै ॥ ६४ ॥

'मधु हरन करनेवाले पुरुषसे शिक्षित विद्याको कहतेहैं'—

न देयं नोपभोग्यं च लुब्धैर्यद्दुःखसंचितम् ॥
भुङ्क्ते तदपि तच्चान्यो मधुहेवार्थविन्मधु ॥ ६५ ॥

जैसे मक्षिकाओंके संचित किये सहदको हरनेवाले पुरुषसे और पुरुष ग्रहणकर भोगताहै तैसे लोभी पुरुषोंने नहीं तो किसीको दिया नहीं आप भोगा ऐसे दुःखसे संचित किये धनको औरही पुरुष भोगताहै यदि उससेभी शेष धनका विनियोग न हुआ तो उससेभी अन्य बलवान् बलात्कारसे लेकर भोगताहै यदि कहो कि, गुप्तधनको अन्यपुरुष कैसे जानेगा और कैसे हरेगा यह नहीं कहसकते क्योंकि धन, धर्मकी प्राप्तिका उपाय वे चिह्नों करके जानतेहैं ॥ ६५ ॥

'अपने उद्यमके विना भोजनकी प्राप्तिरूप विद्याभी मधुके हरनेवालेसे मैंने सीखी सोई कहतेहैं'—

सुदुःखोपार्जितैर्वित्तैराशासानां गृहाशिषः ॥
मधुहेवाग्रतो भुङ्क्ते यतिर्वै गृहमेधिनाम् ॥ ६६ ॥

जैसे मधुका हरनेवाला पुरुष मक्षिकाओंसे प्रथमही मधुको भोग लेताहै तैसे अत्यंत दुःखोंसे संचित किये धनोंकरके विष-

यभोगसुखोंकी कामना करनेवाले गृहस्थोंके भोगोंको प्रथमही संन्यासी भोगताहै "यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ। तयोरन्नमदत्त्वा तु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्" इस वचनसे संन्यासी और ब्रह्मचारीको प्रथम भोजनदान विहित है ॥ ६६॥

'हरिणसे शिक्षित विद्याको कहतेहैं'—

ग्राम्यगीतं न शृणुयाद्यतिर्वनचरः क्वचित् ॥
शिक्षेत हरिणाद्बद्धान्मृगयोर्गीतमोहितात् ॥ ६७॥

वनमें विचरनेवाला संन्यासी ग्राम्यगीतको न सुनै जो सुनै तो लुब्धकपुरुषके गीतसे मोहित मृग जैसे बंधजाताहै तैसे वह संन्यासी ग्राम्यगीतके श्रवणसे बंधनको प्राप्त होजावे ॥ ६७ ॥

'ग्राम्यगीतोंके सुननेसे हरिणीके पुत्र ऋष्यशृंगका बंधन कहतेहैं'

नृत्यवादित्रगीतानि जुषन् ग्राम्याणि योषिताम् ॥
आसां क्रीडनको वश्य ऋष्यशृङ्गो मृगीसुतः॥६८॥

ग्राममें होनेवाले स्त्रियोंके नृत्य, वादित्र (बाजे) गीत सेवन करताहुआ ऋष्यशृंगऋषि स्त्रियोंका क्रीडाका साधन (खिलौना) उनके आधीन होताभया ॥ ६८ ॥

'मीनसे शिक्षित विद्याको कहतेहैं'—

जिह्वयाऽतिप्रमाथिन्या जनो रसविमोहितः ॥
मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धिर्मीनस्तु बडिशैर्यथा ॥ ६९ ॥

जैसे रससे मोहित हुआ मीन मांसलिप्त लोहकंटकोंसे मृत्युको प्राप्त होताहै तैसे दुर्जय जिह्वासे रसासक्त दुर्बुद्धि जन मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ६९ ॥

'रसनेंद्रियको दुर्जयता कहतेहैं'—

इन्द्रियाणि जयन्त्याशु निराहारा मनीषिणः ॥
वर्जयित्वा तु रसनं तन्निरन्नस्य वर्धते ॥ ७० ॥

धीरपुरुष आहाररहित हुए इंद्रियोंको शीघ्रही जीतलेतेहैं परंतु रसनेंद्रियको नहीं जीतसकते, यह अन्न न खानेवालेकी रसनेंद्रिय वृद्धिको प्राप्त होतीहै तात्पर्य यह है कि यदि सर्वथा आहार त्याग देवे तब इतर इंद्रियें तो जीतीजातीहैं परंतु रसनेंद्रिय बढतीहै और यदि यथेष्ट आहार करोगे तो रसके पोषणसे इंद्रियांतरका क्षोभ होगा इसीलिये रसासक्ति त्यागके औषधिकी नाईं सूक्ष्म आहार करे ॥ ७० ॥

तावज्जितेन्द्रियो न स्याद्विजितान्येन्द्रियः पुमान् ॥
न जयेद्रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे ॥ ७१ ॥

जीती हैं रसनेंद्रियभिन्न इंद्रियें जिसने ऐसा पुरुष यावत् रसनेंद्रिय न जीते तावत् जितेंद्रिय नहीं इसीसे रसनेंद्रियके जीतनेसेही संपूर्ण इंद्रियें जीतीजातीहैं अन्यथा नहीं ॥ ७१ ॥

'पिंगलावेश्यासे शिक्षित विद्याको कहनेके लिये उसका आख्यान कहतेहैं'—

पिङ्गला नाम वेश्यासीद्विदेहनगरे पुरा ॥
तस्या मे शिक्षितं किंचिन्निबोध नृपनन्दन ॥ ७२ ॥

हे नृपनंदन ! प्रमम मिथिलापुरीमें पिंगलानामक एक वेश्या थी उससे जो कुछ मैंने सीखाहै सो मेरेसे तू सुन ॥ ७२ ॥

सा स्वैरिण्येकदा कान्तं सङ्केतमुपनेष्यती ॥
अभूत्काले बहिर्द्वारि बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥ ७३ ॥

एककालमें यथेच्छाचारशील वह पिंगला नाम वेश्या रतिमें समर्थ, धन देनहार, पुरुषको एकांत रतिस्थानमें लेजानेकी इच्छासे अलंकृत स्वरूपको धारण कर सायंकालमें गृहके द्वारपर स्थित होतीभई ॥ ७३ ॥

मार्ग आगच्छतो वीक्ष्य पुरुषान्पुरुषर्षभ ॥
तान् शुल्कदान्वित्तवतः कान्तान्मेनेऽर्थकामुका॥७४॥

हे पुरुषर्षभ ! धनकी अभिलाषासे आकुलचित्तवाली वह वेश्या आने जानेवाले पुरुषोंको देखकर उनमें धनयुक्त मूल्य देनेवाले पुरुषोंकोही भोगयोग्य मानतीभई ॥ ७४ ॥

आगतेष्वपयातेषु सा सङ्केतोपजीविनी ॥
अप्यन्यो वित्तवान् कोपि मामुपैष्यति भूरिदः॥७५॥

वह वेश्या रतिस्थानमें आने-जानेवाले पुरुषोंको प्राप्तकर उनसे प्राप्त धनसे जीवनेवाली आने-जानेवाले पुरुषोंमेंभी अत्यंत धन देनेवालेकी आशा कर द्वारपर बैठी रही ॥ ७५ ॥

एवं दुराशया ध्वस्तनिद्रा द्वार्यवलम्बिनी ॥
निर्गच्छन्ती प्रविशती निशीथं समपद्यत ॥ ७६ ॥

इसप्रकार दुराशाकरके नष्टनिद्रावाली वह वेश्या द्वारपर बैठी हुई बाहर आतीजातीकी अर्धरात्र प्राप्त होतीभई ॥ ७६ ॥

तस्या वित्ताशया शुष्यद्वक्त्राया दीनचेतसः ॥
निर्वेदः परमो जज्ञे चिन्ताहेतुः सुखावहः ॥ ७७ ॥

वित्तकी आशासे शुष्कमुखवाली मलीनचित्तयुक्त हुई उस वेश्याके सुखका देनेहार वक्ष्यमाण विचारका कारण परमवैराग्य उत्पन्न होताभया ॥ ७७ ॥

तस्या निर्विण्णचित्ताया गीतं शृणु यथा मम ॥
निर्वेद आशापाशानां पुरुषस्य यथा ह्यसिः ॥
न ह्यङ्गाजातनिर्वेदो देहबन्धं जिहासति ॥७८॥

विरक्तचित्तयुक्त उस वेश्याका यथावत् गीत मेरेसे श्रवणकर पुरुषकी आशारूप फांसी काटनेमें वैराग्यही खड्ग है. हे राजन् ! जिस पुरुषको वैराग्य उत्पन्न हुआ वह पुरुष आशारूप फांसीको त्यागनेमें इच्छा नहीं करता इससे वैराग्यही आशा दूर करनेकेलिये अनुपम है ॥ ७८ ॥

'वेश्या अपना गीत दर्शातीहै'—

॥ पिङ्गलोवाच ॥

अहो मे मोहविततिं पश्यता विजितात्मनः ॥
या कान्तादसतः कामं कामये येन बालिशा॥७९॥

पिंगला बोली—अहो ! जिसने मन नहीं जीता यह मेरा मोहका विस्तार देखो जिस मोहकरके विवेकशून्य हुई तुच्छ पुरुषोंसे भोगधनादिककी मैं इच्छा करतीहूं ॥ ७९ ॥

सन्तं समीपे रमणं रतिप्रदं
वित्तप्रदं नित्यमिमं विहाय ॥
अकामदं दुःखभयादिशोकं
मोहप्रदं तुच्छमहं भजेऽज्ञा ॥ ८० ॥

क्रीडाप्रद, रति देनहार, वित्त देनहार, विनाशरहित मेरे हृदयमें वर्तमान भगवान्‌को छोडकरके यथेष्ट भोगके संपादन करनेमें असमर्थ, दुःख, भय, मनःपीडा, शोक, मोह, देनहार ऐसे तुच्छ पुरुषोंको मैं सेवन करतीहूं अहो इसीसे मैं अज्ञ हूं॥८०॥

अहो मयात्मा परितापितो वृथा
साङ्केत्यवृत्त्याऽतिविगर्ह्यवार्तया ॥
स्त्रैणान्नरादर्थतृषोऽनुशोच्या-
त्क्रीतेन वित्तं रतिमात्मनेच्छती ॥ ८१ ॥

स्त्रीलंपट धनादिकी तृष्णासे युक्त रोगआदिसे व्याकुल ऐसे नरसे धनादिककरके विक्रीत देहसे रतिकी इच्छा करनेवाली मैंने परपुरुषके संगसे निंद्यजीविकासे मनको वृथाही संताप दिया ॥ ८१ ॥

'अहो मेरेको धिक्कार है जो मैं अत्यंत भयभीत पुरुषोंको भजतीहूं यही कहतीहै'—

यदस्थिभिर्निर्मितवंशवंश्य-
स्थूणं त्वचा रोमनखैः पिनद्धम्॥
क्षरन्नवद्वारमगारमेत-
द्विण्मूत्रपूर्णं मदुपैति कान्या ॥ ८२ ॥

अस्थियोंकरके निर्माण किया है वंश[1], वंश्य, स्थूण जिसमें

[1] वंश—स्तंभोंके ऊपर रखाहुआ टेढा वेणु, वंश्य—दोमोंतरफ स्थापित वेणु, स्तंभ—शरीरके पृष्ठ भागमें जो बडा अस्थि है वह वंश है पार्श्वकी अस्थि वंश्य है हस्तपादके अस्थि स्तंभ हैं.

ऐसे त्वच-रोम-नखोंकरके आच्छादित विण्मूत्रसे परिपूर्ण नवद्वारवाले इस नरशरीरको मेरेसे अन्य कौन स्त्री कांतबुद्धिकरके सेवतीहै ॥ ८२ ॥

विदेहानां पुरे ह्यस्मिन्नहमेकैव मूढधीः ॥
याऽन्यमिच्छन्त्यसत्यस्मादात्मदात्काममच्युतात्॥८३

मिथिलापुरीमें रहनेवाले ज्ञानिजनोंके इस पुरमें मोहितचित्त एक मैंही हूं क्यौंकि जो मैं दुष्ट हुई स्वरूप-स्वगुणसे च्युतिरहित परमानंदके देनहार भगवान्‌के सिवाय अन्यभोगकी इच्छा करतीहूं. अहो! मेरेको धिःकार है ॥ ८३ ॥

सुहृत्प्रेष्ठतमो नाथ आत्मा चायं शरीरिणाम् ॥
तं विक्रीयात्मनैवाहं रमेऽनेन यथा रमा॥ ८४ ॥

यह आत्मस्वरूपी अच्युत भगवान् सब देहधारियोंके अत्यंत प्रिय, स्वामी, हितकर्ता है इससे देहादि समर्पण करके इनको अपने वशमें करके जैसे इनके संग लक्ष्मी रमतीहै तैसे मैंभी रमण करूंगी ॥ ८४ ॥

'इस लोक तथा परलोकमें इनसे व्यतिरिक्त कोईभी सेव्य नहीं यही दर्शातीहै'—

कियत्प्रियं ते व्यभजन् कामा ये कामदा नराः ॥
आद्यन्तवन्तो भार्याया देवा वा कालविद्रुताः॥८५॥

जो विषय और कामके देनहार पुरुष तथा देवता ये सब कालके ग्रसेहुए उत्पत्ति-विनाशवाले हैं इससे वे स्त्रीकी कामना क्या पूरी करेंगे ॥ ८५ ॥

नूनं मे भगवान् प्रीतो विष्णुः केनापि कर्मणा ॥
निर्वेदोयं दुराशाया यन्मे जातः सुखावहः ॥ ८६ ॥

इससे मैंने निश्चय कियाहै कि, दुष्टांतःकरणवाली मेरे अज्ञात सुकृत कर्मकरके भगवान् प्रसन्न है क्योंकि जिससे सुखका देनहार यह वैराग्य मेरेको उत्पन्न हुआ ॥८६॥

मैवं स्युर्मन्दभाग्यायाः क्लेशा निर्वेदहेतवः ॥
येनानुबन्धं निर्हृत्य पुरुषः शममृच्छति ॥ ८७ ॥

भगवान्की प्रसन्नताके विना मंदभाग्य मेरे वैराग्यके हेतु क्लेश इस प्रकार न हों; जिस वैराग्यसे देहगेहादिकमें अहंममाभिमानरूप पाशको त्यागकर यह पुरुष मोक्षको प्राप्त होजाताहै ॥ ८७ ॥

तेनोपकृतमादाय शिरसा ग्राम्यसङ्गता ॥
त्यक्त्वा दुराशाः शरणं व्रजामि तमधीश्वरम्॥८८॥

इसलिये भगवान्का किया उपकाररूप वैराग्य शिरसे ग्रहण करके विषयोंमें संलग्न जो दुराशा तिसको त्यागकर उस सर्वनियंता परमात्माकी मैं शरण हूं ॥ ८८ ॥

संतुष्टा श्रद्दधत्येतद्यथा लाभेन जीवती ॥
विहराम्यमुनैवाहमात्मना रमणेन वै ॥ ८९ ॥

यदृच्छालाभसे संतुष्ट हुई और यदृच्छालाभसेही जीवनेवाली परमात्मतत्त्वमें विश्वास करके इस आत्मस्वरूप प्रिय(रमण) पतिकेही संग मैं विहार करूंगी ॥ ८९ ॥

'ब्रह्मादिकोंको त्यागकर भगवान्कीही शरण क्यों प्राप्त होतीहै इसमें हेतु दर्शातेहैं'—

संसारकूपे पतितं विषयैर्मुषितेक्षणम् ॥
ग्रस्तं कालाहिनात्मानं कोन्यस्त्रातुमधीश्वरः॥९०॥

संसारकूपमें पतित, विषयोंसे हृतविवेक, कालरूप सर्पसे ग्रस्त, इस आत्माकी रक्षा करनेमें भगवान्के विना इतर कौन देवता समर्थ है? ॥ ९० ॥

आत्मैव ह्यात्मनो गोप्ता निर्विद्येत यदाऽखिलात् ॥
अप्रमत्त इदं पश्येद्ग्रस्तं कालाहिना जगत् ॥ ९१॥

सावधान हुआ पुरुष इस जगत्को कालरूप सर्पकरके यदि ग्रस्त देखे तब अखिल प्रपंचसे वैराग्य कर अपने आत्माका रक्षक परमात्माही है ऐसा देखे ॥ ९१ ॥

॥ ब्राह्मण उवाच ॥

एवं व्यवसितमतिर्दुराशां कान्ततर्षजाम् ॥
छित्त्वोपशममास्थाय शय्यामुपविवेश सा ॥ ९२ ॥

अवधूतबोले—हे राजन्! इस प्रकार किया है निश्चय जिसने ऐसी वह पिंगला वेश्या कांतपुरुषकी अभिलाषसे उत्पन्न धनादि दुराशाको काटकर शांतिके आश्रित हो शय्यापर सोनेलगी ॥ ९२ ॥

'उक्त विषयका फलित कहतेहैं'—

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ॥
यथा संछिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला॥९३॥ ❋

हे राजन्! आशाही अत्यंत दुःखका साधन है और नैराश्य (आशा छोड बैठरहना) परमसुखका साधन है. जैसे कांतपुरुषकी आशाकरके दुःखित हुई पिंगला उस आशाको छोडकर सुखपूर्वक शयन करतीभई ॥ ९३ ॥

'कुररसे शिक्षित विद्याको कहतेहैं'–

॥ ब्राह्मण उवाच ॥

परिग्रहो हि दुःखाय यद्यत्प्रियतमं नृणाम् ॥
अनन्तं सुखमाप्नोति तद्विद्वान्यस्त्वकिंचनः ॥ ९४ ॥

अवधूत बोले–हे राजन्! पुरुषोंको जो जो अत्यंत प्रिय वस्तु है तिस तिसका परिग्रह अत्यंत दुःखदायक है इसलिये दुःखका हेतु परिग्रह जानकर जो संग्रहसे रहित हुआ कालक्षेप करताहै वही अनंत सुखको प्राप्त होताहै ॥ ९४ ॥

'यही बात कुररके दृष्टांतसे स्पष्ट दिखातेहैं'–

सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनो ये निरामिषाः ॥
तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत ॥ ९५ ॥

संग्रह कियाहै मुखमें मांस जिसने ऐसे कुरराख्य पक्षिविशेषको मांसरहित बलवंत श्येन गृध्रादिक जब मारदेतेहैं तब वह कुरर मांसको छोडकर सुखको प्राप्त होजाताहै ॥ ९५ ॥

'अर्भक (बालक) से शिक्षित विद्याको कहतेहैं'–

न मे मानावमानौ स्तो न चिन्ता गेहपुत्रिणाम् ॥
आत्मक्रीड आत्मरतिर्विचरामीह बालवत् ॥ ९६ ॥

मेरेको लोककृत मानापमानसे उत्पन्न सुख-दुःख नहींहैं और गेह-पुत्रवालोंको जो चिंता होतीहै सोभी नहींहै क्योंकि परमात्माके साथ क्रीडा करनहार परमात्मामेंही अत्यंत प्रीतियुक्त हो इस लोकमें सुखपूर्वक बालककी नाईं विचरताहूं ॥ ९६ ॥

द्वावेव चिन्तया मुक्तौ परमानन्द आप्लुतौ ॥
यो विमुग्धो जडो बालो यो गुणेभ्यः परं गतः ॥ ९७ ॥

हे राजन्! परमानंदमें निमग्न दोही पुरुष चिंतासे रहित हैं एक तो मानापमानको न जाननेवाला उद्यमरहित बालक और द्वितीय परब्रह्मनिष्ठ ॥ ९७ ॥

'कुमारीसे शिक्षित विद्याको कहनेकेलिये कुमारीका आख्यान कहतेहैं'–

क्वचित्कुमारी त्वात्मानं वृणानान् गृहमागतान् ॥
स्वयं तानर्हयामास क्वापि यातेषु बन्धुषु ॥ ९८ ॥

किसी देशमें कोई कुमारी उसके श्वशुरगृहके पतिसहित पाहुने जब उसको लेनेको आये तब उनको देखकर उनका आतिथ्यसे सत्कार आपही करनेलगी क्योंकि उसके माता-पिताआदिक बंधुजन घरमें नहींथे किसी कार्यांतरकेलिये अन्यत्र गयेरहे ॥ ९८ ॥

तेषामभ्यवहारार्थं शालीन् रहसि पार्थिव ॥
अवघ्नन्त्या प्रकोष्ठस्थाश्चक्रुः शङ्खाः स्वनं महत् ॥ ९९ ॥

हे राजन्! उन्होंके भोजनके वास्ते एकांतस्थलमें धान्योंको कूटनेलगी जब उसकी चुडियां बहुत शब्द करनेलगीं ९९

सा तज्जुगुप्सितं मत्वा महती व्रीडिता ततः ॥
बभञ्जैकैकशः शङ्खान् द्वौ द्वौ पाण्योरशेषयत् ॥१००॥

तब वह कुमारी धान्योंका कूटना निंदित मानकर लज्जा-युक्त हुई क्रमसे एकेक चूडीका अपसारण करतीभई दो दो चुडियां हस्तोंमें शेष रक्खीं ॥ १०० ॥

उभयोरप्यभूद्धोषो ह्यवघ्नन्त्याः स्म शङ्खयोः ॥
तत्राप्येकं निरभिददेकस्मान्नाभवद्ध्वनिः ॥ १०१ ॥

धान्योंके कूटनेसे उसके दो दो चुडियोंके संघर्षसे जब फिरभी शब्द होनेलगा तब दोनों हस्तमें एकेक चूडीको रखकर बाकीकीभी चुडियां निकासदीं तब एकेक चूडीसे शब्द न होताभया ॥ १०१ ॥

अन्वशिक्षमिमं तस्या उपदेशमरिंदम ॥
लोकाननुचरन्नेताँल्लोकतत्त्वविवित्सया ॥ १०२ ॥

तब हे शत्रुनाशक! उस कुमारीसे यह उपदेश मैं सीकताभया यदि कहो उस कुमारीका आपका कैसे संग भया? सो सुनो कि, लोकतत्त्वके जाननेकी इच्छासे इन सब लोकोंमें मैं विचरताहूं इससे मेरा उसका समागम हुआ ॥ १०२ ॥

' उपदेश दर्शातेहैं '—

वासे बहूनां कलहो भवेद्वार्ता द्वयोरपि ॥
एक एव चरेत्तस्मात्कुमार्या इव कङ्कणः ॥ १०३ ॥

हे राजन्! बहुत पुरुषोंके एक जगँह निवाससे कलह उत्पन्न होताहै और दोनोंके वासमेंभी परस्पर वार्ता होतीहै

इससे कुमारीके कंकण (चूडी) की नाईं एकलाही पुरुष विचरे ॥ १०३ ॥

' शरकारसे शिक्षित विद्याको कहतेहैं '—

मन एकत्र संयुञ्ज्याज्जितश्वासो जितासनः ॥
वैराग्याभ्यासयोगेन ध्रियमाणमतन्द्रितः ॥ १०४ ॥

आलस्यादिरहित हुआ पुरुष आसनको तथा श्वासको जीतकर वैराग्यके अभ्याससे वशमें क्रियमाण मनको एकत्र संयुक्त करे जिससे अन्यत्र चलायमान नहीं हो. तात्पर्य यह है कि, प्रथम आसनके जीतनेसे श्वासका जीतना होताहै श्वासके जीतनेसे प्राणाधीन मन निश्चल होजाताहै फिर अन्यत्र कहींभी मन नहीं जावेगा ॥ १०४ ॥

' मनको एकत्र कहां लगावे जिसमें लगावे उस स्थलको दर्शातेहैं '—

यस्मिन्मनो लब्धपदं यदेत-
च्छनैः शनैर्मुञ्चति कर्मरेणून् ॥
सत्त्वेन वृद्धेन रजस्तमश्च
विधूय निर्वाणमुपैत्यनिन्धनम् ॥ १०५ ॥

जिस परमात्मामें लगा हुआ मन शनैः शनैः कर्मवासनाको छोडदेताहै तिसमें मनको लगाकर वृद्धिंगत सत्त्वगुणकरके रजोगुण-तमोगुणको दूर करके प्राकृतगुण आदि पदार्थरहित उस परमात्मस्वरूपको प्राप्त होजाताहै ॥ १०५ ॥

तदैवमात्मन्यवरुद्धचित्तो
न वेद किंचिद्बहिरन्तरं वा ॥
यथेषुकारो नृपतिं व्रजन्त-
मिषौ गतात्मा न ददर्श पार्श्वे ॥ १०६ ॥

बाणके ऋजु (अच्छा) करनेमें दत्तचित्त हुआ बाणके बनानेवाला पुरुष भेर्यादिकोंके महाशब्द करनेवाली सेनाके सहित अपने पार्श्वमें जानेवाले राजाको जैसे नहीं जानताहै तैसे सर्वशरीरक परमात्मामें स्थिरचित्त पुरुष परमात्मव्यतिरिक्त बाहर-भीतर कुछभी नहीं जानताहै ॥ १०६ ॥

' सर्पसे शिक्षित विद्याको कहतेहैं'–

एकचार्यनिकेतः स्यादप्रमत्तो गुहाशयः ॥
आलक्ष्यमाण आचारैर्मुनिरेकोल्पभाषणः ॥१०७॥

जनोंसे शंकित हुआ, अकेलाही विचरनेवाला, नियमसे एक स्थानमें न रहनेवाला, सदा सावधान हुआ, एकांतहीमें निवास करनेवाला, अपनी गति दूसरेसे छिपाताहुआ सर्प जैसे रहताहै तैसेही मितभाषणयुक्त मुनिभी रहे ॥ १०७ ॥

गृहारम्भोतिदुःखाय विफलश्चाध्रुवात्मनः ॥
सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते ॥ १०८ ॥

गृहका निर्माण करना आयाससाध्य धनके व्ययसे होताहै जिस देहकेलिये गृहका करना होताहै वह देह तो नाशवान् है फिर गृहारंभ विफलही है इससे जैसे सर्प परकृत वल्मीकआदि गृहोंमें प्रविष्ट होकर सुखपूर्वक रहताहै तैसे अन्यपुरुषोंके किये गृहोंकरकेही विवेकी पुरुषको रहना उचित है ॥ १०८ ॥

' केवल ईश्वरसेही ऊर्णनाभिके दृष्टांतसे विश्वका सृष्टि-संहार मैंने निश्चित कियाहै सो यह बात कहनेकेलिये प्रथम संहारका प्रकार कहतेहैं '–

एको नारायणो देवः पूर्वसृष्टं स्वमायया ॥
संहृत्य कालकलया कल्पान्त इदमीश्वरः ॥ १०९ ॥
एक एवाद्वितीयोभूदात्माधारोखिलाश्रयः ॥
कालेनात्मानुभावेन साम्यं नीतासु शक्तिषु ॥
सत्त्वादिष्वादिपुरुषः प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ ११० ॥
परावराणां परम आस्ते कैवल्यसंज्ञितः ॥
केवलानुभवानन्दसंदोहो निरुपाधिकः ॥ १११ ॥

एकही सर्वनियंता, सृष्ट्यादि क्रीडामें तत्पर हुए, अपने संकल्पसे, पूर्वसृष्ट इस विश्वका, कालाख्य अपनी शक्तिकरके, संहार कर, समस्त प्रपंचके आधार, जिनका अन्य कोई आधार नहींहै ऐसे एकही सजातीयविजातीय–भेदरहित हुए, तथा अपने कालात्मक शक्तिविशेषसे, कारणभूत सत्त्वगुणआदि शक्तियोंको प्रधानमें लीन करनेवाले प्रधान और पुरुषकेभी नियंता ब्रह्मादिदेव और मुक्त इनकेभी परमप्राप्य, प्राकृत उपाधिरहित, स्वयंप्रकाश, केवल ज्ञानानंदैकस्वरूप, कैवल्यशब्दवाच्य हुए केवल एकही परमात्मा कल्पके अंतमें रहतेहैं ॥ १०९ ॥ ॥ ११० ॥ १११ ॥

'केवल ईश्वरसेही सृष्टिप्रकार दिखातेहैं'–

केवलात्मानुभावेन स्वमायां त्रिगुणात्मिकाम् ॥
संक्षोभयन्सृजत्यादौ तथा सूत्रमरिंदम ॥ ११२ ॥

हे शत्रुनाशक! केवल अपने प्रभावसेही त्रिगुणात्मक अपनी प्रकृतिमें क्षोभ करवाकर तिस प्रकृतिकरके प्रथम क्रियाशक्तिप्रधानवाले महत्तत्त्वको परमात्मा रचतेहैं ॥ ११२ ॥

तामाहुस्त्रिगुणव्यक्तिं सृजन्तीं विश्वतोमुखम् ॥
यस्मिन्प्रोतमिदं विश्वं येन संसरते पुमान् ॥ ११३॥

नानाविध त्रिगुणात्मक विश्वको अहंकारद्वारा रचनेवाले सूत्रकोही गुणत्रयका कार्य कहतेहैं जिस कारण भूतसमष्टि-प्राणरूप सूत्रमें यह विश्व ओतप्रोत है अर्थात् ग्रथित है जिस प्राणरूप सूत्रसे यह जीवात्मा संसारको प्राप्त होताहै॥ ११३॥

यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णां सन्तत्य वक्त्रतः ॥
तया विहृत्य भूयस्तां ग्रसत्येवं महेश्वरः ॥ ११४ ॥

हे राजन्! जैसे ऊर्णनाभि (मकरी) हृदयसे मुखद्वारा ऊर्णाको प्रसारकर उस ऊर्णाके साथ क्रीडा कर फिर उसको ग्रसलेताहै तैसेही परमात्मा स्वतः इस विश्वको प्रसारकर उसमें विहार कर फिर अपनेमेंही विश्वका संहार करलेतेहैं ११४

'पेषस्कृदाख्य भ्रमरविशेषसे शिक्षित विद्याको कहतेहैं'—

यत्र यत्र मनो देही धारयेत्सकलं धिया ॥
स्नेहाद्द्वेषाद्भयाद्वापि याति तत्तत्सरूपताम्॥ ११५॥

बुद्धिपूर्वक स्नेह, द्वेष और भय इन्होंकरके जो देही मनको जिस जिस विषयमें धारण करे वह देही तत्तत्समानरूपताको प्राप्त होताहै ॥ ११५ ॥

कीटः पेशस्कृतं ध्यायन्कुड्यां तेन प्रवेशितः ॥
याति तत्साम्यतां राजन् पूर्वरूपमसन्त्यजन् ११६॥

हे राजन्! पेषस्कृतसे कुड्डी (भित्ति) में निरुद्ध हुआ कीट भयसे उस पेषस्कृतका ध्यान करताहुआ पूर्वरूपको त्यागकर उसके समानरूपको प्राप्त होजाताहै अर्थात् तद्रूप होजाताहै ॥ ११६ ॥

'अपने देहसे शिक्षित विद्याको दर्शातेहैं'—

एवं गुरुभ्य एतेभ्य एषा मे शिक्षिता मतिः ॥
स्वात्मोपाशिक्षितां बुद्धिं शृणु मे वदतः प्रभो ११७॥

हे प्रभो! इन उक्त गुरुओंसे इस प्रकार मैंने इतनी विद्या सीखी और अपने देहसे शिक्षित जो विद्या है तिसको कहनेवाले मेरेसे तू सुन॥ ११७ ॥

देहो गुरुर्मम विरक्तिविवेकहेतु-
र्बिभ्रत्स्म सत्त्वनिधनं सततार्त्युदर्कम् ॥
तत्त्वान्यनेन विमृशामि यथा तथापि
पारक्यमित्यवसितो विचराम्यसङ्गः॥ ११८॥

हे राजन्! यह देहभी मेरा गुरु है क्योंकि इस देहसे मेरेको वैराग्य और विवेक उत्पन्न हुए हैं यह देह पीडायुक्त सदा उत्पत्ति-नाशवाला इस देहसे यथार्थ तत्वोंका विचार करनेसेही मेरेको वैराग्य हुआहै तबभी मैं इस पर प्रीति नहीं करता

क्योंकि यह देह कुत्ते और शृगाल (स्यार) आदियोंका भक्ष्य है यह निश्चय कर सर्वसंगरहित हुआ यथेच्छ विचरताहूं ॥ ११८ ॥

जायात्मजार्थपशुभृत्यगृहाप्तवर्गान्
पुष्णाति यत्प्रियचिकीर्षया वितन्वन् ॥
स्वान्ते सकृच्छ्रमवरुद्धधनः स देहः
सृष्ट्वास्य बीजमवसीदति वृक्षधर्मः ॥ ११९ ॥

कृच्छ्रपूर्वक संचित किये हैं धन जिसने ऐसा पुरुष जिस देहकी भोग संपादनसे प्रिय करनेकी इच्छासे जाया (स्त्री), पुत्र, धन, पशु, भृत्य, गृह और आप्तवर्ग इनका विस्तार करनेकेलिये इनका पोषण करताहै वह देह, आयुषके अंतमें नाशको प्राप्त होताहै इसप्रकार देहके नाश हुएपरभी दुःखकी निवृत्ति नहीं है जैसे वृक्ष वृक्षांतरके बीजको उत्पन्न कर आप नष्ट होजाताहै तैसे यह देहभी देहांतरके बीजभूत कर्मको रचकर नाशको प्राप्त होजाताहै ॥ ११९ ॥

जिह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हि तर्षा
शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ॥
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्ति-
र्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥ १२० ॥

जैसे बहुत सपत्नियां एक पुरुषकी अनेकी स्त्रियां अपने एक स्वामीको अपने अपने प्रति खेंचतीहैं तैसे इस देहाभिमानी पुरुषकोभी एक ओरसे जिह्वा रसकेलिये और पिपासा (तृषा) जलके लिये, शिश्नेंद्रिय रतिकेलिये, त्वगिंद्रिय स्पर्शकेलिये, उदर अन्नकेलिये, श्रोत्रेंद्रिय शब्दकेलिये, घ्राणेंद्रिय गंधकेलिये, चक्षुरिंद्रिय रूपकेलिये, कर्मेंद्रिय वचन, आदान, गति, मलविसर्गआदि विषयोंकेलिये खेंचतीहैं ॥ १२० ॥

'वैराग्यविवेकका कारण देहको प्रतिपादन कर इस देहकी दुर्लभता दिखातेहुए ईश्वरमें निष्ठाविधान करतेहैं'—

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या
वृक्षान्सरीसृपपशून्खगदंशमत्स्यान् ॥
तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय
ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः ॥ १२१ ॥

विविध क्रीडामें तत्पर भगवान् अपनी शक्तिरूप प्रकृति करके जीवोंके निवासस्थानभूत वृक्ष, सर्प, पशु, पक्षी, मशक, (डांस, मच्छरी) मत्स्य, ऐसे ऐसे नानाप्रकारके शरीर रचकर तिन शरीरोंसेभी असंतुष्टहृदय हुए परमात्मा अपने साक्षात्कारपर्यंत योग्यबुद्धिवाले पुरुषशरीरको विधान कर आनंदको प्राप्त होतेभये क्योंकि यह पुरुषशरीरही पुरुषार्थका साधक है १२१

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसंभवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ॥
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु याव-
न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥ १२२ ॥

बहुत जन्मोंके अंतमें सब पुरुषार्थोंका साधन यह मनुष्यदेहको कथंचित् प्राप्त होकर इस जन्ममेंही यावत् रोगादिरूप

विपत्ति न आवे तावत् धैर्ययुक्त हुआ पुरुष मोक्षकेलिये शीघ्रही यत्न करे क्योंकि जन्मके साथ इसके मृत्यु लगीहुई है इससेही यह देह अनित्य है विषयलाभके वास्ते यत्न करके देव-मनुष्यादि जन्मको व्यर्थ न करे क्योंकि विषयसुखका लाभ तो सूकरादि योनियोंमेंभी सुलभ है ॥ १२२ ॥

एवं संजातवैराग्यो विज्ञानालोक आत्मनि ॥
विचरामि महीमेतां मुक्तसङ्गोऽनहंकृतिः ॥ १२३ ॥

इसप्रकार बहुत गुरुओंसे सम्यक् उत्पन्न है वैराग्य जिसको और आत्मसाक्षात्कारात्मक है प्रदीप जिसके ऐसा आत्मस्वरूमें स्थित हुआ अहंकाररहित, गृह-पुत्रादिकोंमें ममतारहित हुआ मैं इस पृथ्वीमें विचरताहूं ॥ १२३ ॥

'यदि कहो कि एक गुरुसेही कार्यसिद्धि होजातीहै अनेक गुरुओंसे क्या कार्य सिद्ध होताहै, सो अनेक गुरु करनेका प्रयोजन दर्शातेहैं'—

न ह्येकस्माद्गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात्सुपुष्कलम् ॥
ब्रह्मैतदद्वितीयं वै गीयते बहुधर्षिभिः ॥ १२४ ॥

हे राजन् ! एक गुरुसे सुंदर स्थिर पुष्कल ज्ञान नहीं होताहै क्योंकि इस सर्वविलक्षण परामात्माके स्वरूपका निरूपण ऋषिजन बहुत प्रकारसे करतेहैं बहुत प्रकारके निरूपण करनेसे परमात्माका यथावत् ज्ञान मेरेको जब नहीं हुआ इस हेतुसेही परमात्मस्वरूपका याथातथ्य सुस्थिर ज्ञानकेलिये अनेक गुरु मैंने किये ॥ १२४ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

इत्युक्त्वा स यदुं विप्रस्तमामन्त्र्य गभीरधीः ॥
वन्दितोऽभ्यर्थितो राज्ञा ययौ प्रीतो यथागतम् ॥ १२५

श्रीभगवान् बोले—हे उद्धव ! वह गंभीरबुद्धिवाले अवधूत ब्राह्मण यदुको इसप्रकार उपदेश करके यदुराजासे आज्ञा ले उसके पूजा प्रणामको स्वीकार कर प्रीतिपूर्वक जैसे आयेथे तैसे यदृच्छापूर्वक उस स्थानसे गमन करतेभये ॥ १२५ ॥

'अवधूतके इतिहासका उपसंहार करतेहैं'—

अवधूतवचः श्रुत्वा पूर्वेषां नः स पूर्वजः ॥
सर्वसङ्गविनिर्मुक्तः समचित्तो बभूव ह ॥ १२६ ॥

इति श्रीमद्भागवतान्तर्गत-अवधूतगीतं समाप्तम् ॥ ७ ॥

हे उद्धव ! हमारे पूर्वपुरुषोंमेंभी पूर्व उत्पन्न होनेवाले ! वह वृद्ध यदुमहाराज अवधूतके वचनको श्रवण करके धन-पुत्रादिकोंकी आसक्तिसे निर्मुक्त हो मेरेमेंही चित्तयुक्त होतेभये ॥ १२६ ॥

इति श्रीमहावनशास्त्रिकृत-श्रीमद्भागवतान्तर्गत-अवधूतगीतभाषानुवादः समाप्तः ॥ ७ ॥

इति भाषानुवादसहितं सप्तगीतं
समाप्तम्.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना—कल्याण (मुंबई)

श्रीः।

नूतन पुस्तकों की सूची।

नाम	कि.रु.आ.	ट.म.रु.आ.
गोरक्षपद्धति भा० टी० स० (योगशास्त्र)	०-१२	०-१
आलवंदार भा०टी०...	०-४	०-॥
भागवतसारभाषा	१-०	०-४
रामगीतावली	०-१२	०-२
नारायणकवच भा०टी०	०-२	०-॥
संस्कृतनामावली	०-२	०-॥
गीताश्लोकार्थदीपिका अति... उत्तमटिप्पणीसमेत	१-४	०-३
जातकालंकार भा०टी०अतिउत्तम	०-६	०-१
स्वरोदयसार चरणदासकृत	०-२	०-॥
लघुबोधिनीसहिततर्कसंग्रह	०-६	०-॥
घटकर्परकाव्य सान्वय संस्कृतटीका तथा भा० टी०	०-३	०-॥
मूलरामायण भाषानुवाद गोविंद-राजीयव्याख्यानुसार	०-८	०-॥
शिवस्वरोदय भाषाटीका... ...	०-१०	०-२
जानकीमंगल	०-१	०-॥

नाम.	की.रु.आ.	ट.म.रु.आ.
शिवसंहिता भाषाटीकासह (योगशास्त्र)	१-०	०-२
गरुडपुराण भाषाटीका	१-०	०-३
महाभाष्य नवाह्निकमात्र	२-०	०-४
वाल्मीकिरामायण भूषणटीकासह चार काण्ड छपके तय्यार हैं.		
कोकिलामाहात्म्य अधिकआषाढका...	०-१२	०-१
श्रीगोदास्तोत्रम्...	०-२	०-॥
द्राविडाम्नायमाहात्म्य...	०-१	०-॥
भक्तिप्रबोध	०-२	०-॥
परमेश्वरशतक	०-६	०-१
अनुपानदर्पण (वैद्यक)	०-१०	-१
भावपंचाशिका कविवृंदजीकृत	०-२	०-॥
हिंदी अंग्रेजी शिक्षक प्रायमर	०-२	०-॥
भक्तमाल हरिभक्तिप्रकाशिका वार्तिक हिंदी भाषा में छपती है		
कर्मविपाक भा०टी०	१-४	०-३
भवानीमानसिकपूजन...	०-१	०-॥
सप्तश्लोकीगीता तथा चतुःश्लोकीभागवत (भाषाटी)	०-१	-॥०

श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासकृत–
रामायण (सटीक)
पंडित ज्वालाप्रसादकृतटीका।

लीजिये महाशय ! कविवरशिरोमणि तुलसीदासकी अपूर्व कविताका अक्षरार्थ भाषामृतभी लीजिये सम्पूर्ण क्षेपकों सहित और श्रुतिस्मृतिपुराणोंके अद्भुत दृष्टांतों-सहित जिसमें सम्पूर्ण शंका समाधानका विवरण है, तुलसीदासजीका समग्र जीवनचरित्र, माहात्म्य, रामजन्म चतुर्दशवर्ष वनवासका तिथिपत्र और अष्टम रामाश्वमेध लवकुशकाण्डभी अक्षरार्थ सम्मिलित है, गूढार्थ, अक्षौहिणीकी संख्या, प्रश्नावली, भजनमाला, प्रभाती आदिके सिवाय परम मनोहर फोटोग्राफके विचित्र चित्रभी हैं, सूर्यवंशका वृक्ष और हनुमानजीको चित्रित प्रतिमा है इन सबके सिवाय कठिन शब्दोंका बृहत्-कोषभी लगाया गया है ऐसी रामायण आजपर्य्यन्त अन्यत्र कहीं नहीं छपी देखतेही तन मन प्रसन्न होताहै मूल्य ८ रु० है जिल्द चित्रितसुनहरी परम मनोहर है.

२ रामायण बडा।

श्लोकार्थ गूढार्थ छन्दार्थ स्तुत्यर्थ शंकासमाधान और तुलसीदासजीका जीवनचरित्र, रामवनवासतिथिपत्र, रामाश्वमेध लवकुशकाण्ड, माहात्म्य, बरवारामायणके सहित जिसमें पंचीकरणका बडा नक्शा और रघुनाथपुष्पाञ्जलि, रामायणकोष छत्रबन्धादि जिसीमें ३८०० कठिन २ शब्दोंके अर्थभी लिखेहैं अक्षर अत्यंत मोटा ग्लेज कागजका की० ५ रु० रफ् कागजकी की० ४ रु०

३ रामायण मझोला।

ऊपरके सब अलंकारोंसहित इसका सांचा छोटा है अक्षर सामान्य है. कीमत २॥ रु० रफ् १॥ रु०

४ रामायण गुटका।

यहभी पूर्वोक्त सब अलंकारोंसे पूरित है साधु तथा देशाटन करनेवालोंको अत्यंत उपयोगी है. कीमत बहुतही थोडी केवल १ रु०

भजनामृत।

यह साधु वैष्णवों तथा हरिभक्तों के लिये अधिक प्रयोजनीय ग्रंथ है इसमें नित्यकीर्त्तन, प्रभाती, होली, विनय, आरती, हिंडोल, गौरी, जय, धुनि इत्यादि सुंदर भजन हैं कीमत १ रु०

ब्रजविलास।

ब्रजमण्डल से प्राप्त यह ग्रंथ अत्यंत शुद्धतापूर्वक बडे २ अक्षरों में मोटे कागज पर छपा है कठिन शब्दों की टिप्पणीभी है, कीमत ५ रु०

श्रीमद्भागवत संस्कृत तथा भाषाटीकासहित ।

श्रीवेदव्यासप्रणीत श्रीमद्भागवत अठारहों पुराणोंमेंसे श्रीमद्भागवत सबसे कठिनहै और इसका प्रचार भारतखण्डमें सबसे अधिक है यह ग्रंथ क्लिष्टताके कारण सर्वसाधारण लोगोंको टीका होनेपरभी अच्छीरीतिसे समझना कठिनथा कोई २ स्थलमें बडे २ पण्डितोंकी बुद्धि चक्करमें उडजातीथी इसलिये बिना संस्कृतपढे सर्व साधारण पण्डित व स्वल्पविद्या जाननेवाले भगवद्भक्तोंके लाभार्थ संस्कृतमूल अतिप्रिय ब्रजभाषाटीकासहित जो कि हिन्दीभाषाओंमें शिरोमणि और माननीयहै उसी भाषामें टीका बनवाकर प्रथमावृत्ती छपायीथी वह श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकंदके कृपाकटाक्षसे बहुतही जल्दी हाथोंहाथ बिकगई अब इस्की द्वितीयावृत्ती प्रथमावृत्तीकी अपेक्षा अच्छीतरह शुद्ध करवाके मोटे अक्षरमें छपायीहै और संबंधित कथाओंके सिवाय उत्तमोत्तम भक्तिज्ञानमार्गी ५०० अतीव मनोहर दृष्टांत दिये हैं कि जिनके श्रवणसे श्रोताओंका मन भावनानुसार मग्न होजाता है कागज विलायती बढिया लगायाहै माहात्म्य षष्ठाध्यायी भाषाटीका सहित इस्के साथही है प्रथमावृत्तीमें मूल्य १५ रुपय्येथा इस आवृत्तीमें केवल १२ बाराही रुपया रक्खाहै ज्यादा प्रशंसा बाहुल्यमात्रहै.

(दोहा) एकघडी आधीघडी, ताहूकी पुनिआध ।
नेमसहित जो नितपढे, कटै कोटि अपराध ॥ १ ॥

श्रीमहाभारत।

सटीक मोटेअक्षरका।

महर्षिश्रीवेदव्यासप्रणीत और पंचमवेद संज्ञा होनेसे विशेष प्रशंसाकरना निरर्थक है यह पुस्तक गणपत कृष्णाजीके छापेका वह है जो पूर्वकालमें ६० वा ८० रुपयेको मिलताथा उसीको हमने सब लेकर ४० रुपयेमें देतेहैं टपाल महसूल ५ रु० अलग है परंतु अब थोडी पुस्तकें रहगईहैंमहाभारतके प्रेमीलोगोंको शीघ्र लेनाचाहियेकुछकालके पीछे मूल्य अधिक होजायगा ऐसाग्रंथ उत्तम छपनेकी आशाभी कमतीहै. लीजियेतो टपाल खर्चासहित मूल्य (४५) पैंतालीसही रुपयेमें अभी देतेहैं.

मुहूर्तचिन्तामणि–(भाषाटीकासमेत)

सम्पूर्ण ज्योतिषी पंडितोंको तथा ज्योतिष जानने कीइच्छा करनेवालों को विदित किया जाता है कि, मुहूर्तचिन्तामणि की साधारण भाषाटीका कहीं २ छपीहै परंतु सांप्रतमें अपने "लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापाखाने में ऐसी अत्युत्तम टीका छापीगई है कि, जिसमें ज्योतिर्वित् कविवर रामदैवज्ञ का गूढाशय एवं स्वल्पाक्षरोंमें बह्वर्थता सर्व साधारणको सहसा विदित नहीं होतीथी. उसे यथावत् पीयूषधाराके अनुमत तथा अन्य

ग्रंथातरीय प्रमाण युक्तियों से स्पष्ट करदिया है ऐसी अत्युत्तम भाषाटीका अन्यत्र कहीं न मिलेगी इस लेख की सत्यता एक बार देखनेही से गुणज्ञ लोगों को प्रत्यक्ष होगी तथा इसमें संपूर्ण चक्रादि लगाये गये हैं जिन के देखने से मौहूर्त्तिकों को औरभी सुगमता होजाती है. लीजियेमूल्य टपालखर्चासहित सवा (१।) रु० मात्र है.

हितोपदेश (भाषाटीका)

व्रजरत्न–भट्टाचार्यविरचित।

यह पुस्तक तो सर्वोपरि उत्तम है और श्रीयुतपंडित ज्वालाप्रसादजीने शुद्ध कियाहै. महाशयों ! यह पुस्तक अवश्य संग्रहमें रखनेलायक है. इसका मूल्यभी ठीक २ रक्खाहै अर्थात् डेड (१॥) रुपयेमें देतेहैं.

मनुस्मृति ।

सान्वय अत्युत्तम सरल हिंदीभाषाटीकासहित छपकर विक्रयार्थ प्रस्तुतहै ऐसा उत्तमग्रंथ अद्यावधिपर्य्यंत कहीं नहीं छपाथा भारतवर्षके राजा महाराजा तथा विप्रगण इसीके अनुसार राजनीति और प्रजापालन धर्मशासन करते हैं यहाँतक कि, श्रीमन्महाराज अंग्रेजबहादुरभी इसका अवलम्ब लेते हैं यहग्रथ परमसुंदर मोटे टैप और जाडे कागजपर छपा है की० २॥ रु०

विष्णुसहस्रनाम ।

(निरुक्ति–निर्वचन–भगवद्गुणदर्पणभाष्यसहित.)

अनुष्टुप्श्लोकात्मक निरुक्ति व्याख्यासमेत और प्रकृतिप्रत्यय को दिखानेवाले पाणिनिसूत्रों से गर्भित ऐसी निर्वचन नामक द्वितीय व्याख्या से युक्त भगवद्गुणदर्पण नामक विष्णुसहस्रनामभाष्य संपूर्ण छपके तय्यार है. की०५ रु. विष्णुसहस्रनाम (भाषाटीका) और उक्त भाष्य के अनुसार विष्णुसहस्रनाम का व्युत्पत्तिसहित हिंदीभाषा में दीपिका नामक ग्रंथ (कीमत रु० १) तथा शाङ्करभाष्य के अनुकूल विष्णुसहस्रनाम का व्युत्पत्तिसहित हिंदीभाषा में चन्द्रिका नामक ग्रन्थ (कीमत १२ आ०) सो ये दोनों पुस्तकें अत्यंत सुंदर छोटे बडे अक्षरों में छपकर विक्रयार्थ प्रस्तुत हैं जिन महाशयों को लेने की इच्छा हो शीघ्र सूचना करें.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना.

कल्याण–(मुंबई)

नूतन पुस्तकोंकी जाहिरात.

☞ श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण-गोविंदराजीय भूषण और तनिश्लोकी रामानुजी सहित छपके तैयार है. ग्राहक लोगोंको इसका मूल्य २५ रु० पडेगा और भगवद्गुणदर्पणाख्य श्रीविष्णुसहस्रनामभाष्य १२००० ग्रन्थ भेटमें दिया जायगा. इसका डाकमहसूल अलग पडेगा. डाकमहसूल प्रथम आनेसे पुस्तक व्हाल्युपेबलसे भेजा जायगा. इसका कमिशन नहीं मिलेगा.

लघुसिद्धांत कौमुदी-सुकुमारमति छात्रवर्गके उपयोगके लिये इस पर मुरादाबाद वास्तव्य व्रजरत्नभट्टाचार्यसे सरल और सुबोध हिंदोस्थानी भाषामें सविस्तर रसालाख्य भाषाटीका बनवाकर शिक्षा, गणपाठ, परीक्षोपयोगी प्रश्न, अकारादिक्रमसे सुबंतशब्द, धातु, सूत्रसूची आदि परिशिष्टसह मुद्रित की है. कीमत २ रु०।

	रु. आ.		रु. आ.
श्रीकृष्णाष्टक सटीक	०-१	बारामासी लावणीसंग्रह	०-४
मेघदूत भा. टी.	०-८	मूर्खशतक-निंदकनामा	०-३
आत्मबोध भा०टी०	०-४	अभिलाखसागर भाषा	२-०
तत्त्वबोध भा०टी०....	०-२॥	भुवनदीपक भा० टी.	०-८
पद्मकोश भा०टी०....	०-४	अन्वयप्रबोध	०-२
विद्याविज्ञापन भाषा	०-१॥	लघुजातक भा० टी०	०-८
दारिद्र्यमोचनाष्टक	०-१	गोपदेशचांद्रिका भाषा	०-१
पदावली भाषा	०-१॥	रंभाशुकसंवाद भा. टी.	०-२

पुस्तकें मिलनेका ठिकाना-गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापाखाना,
कल्याण-मुंबई.